- तृतीय अध्याय -

- भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ -

अध्याय - तृतीय

भैरवप्रसाद गुप्तजी के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ

समाज जीवन के विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक समस्याओं का निर्माण होता है। ये समस्याएँ मानवी विकास में बाधा पहुँचाती हैं। पूंजीवादी समाज व्यवस्था ने व्यक्ति और समाज के स्नेहपूर्ण संबंधों में तनाव उत्पन्न किये। व्यक्ति व्यक्ति के बीच के मधुर संबंध लुप्त हो गये। सामंतवादी समाज व्यवस्था पर होनेवाले पूंजीवादी और साम्राज्यवादी आक्रमण के कारण सामान्य जनता की रीढ टूट गयी। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात आये हुए नये विचारों और नयी संस्कृति ने समाजव्यवस्था को झकझोर दिया। अंग्रेजों के आर्थिक शोषण ने भारत की संपूर्ण शक्ति को पी डाला। एक तरफ नये विचार, नई शिक्षा से उत्तेजित मस्तिष्क तो दूसरी तरफ उत्तेजना को खतम करनेवाली गुलामी की बेडियाँ। इस स्थिति में अपने अधिकारों और हकों की मानवीय जीवन में अवश्यकता महसूस करके नई समाज रचना के सपने देखने का प्रयत्न मनुष्य करने लगा। परिणाम स्वरूप - 'धार्मिक स्तर पर साम्प्रदायिकता की समस्याएँ, सामाजिक स्तर पर नारी संबंधी समस्याएँ, व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंधों की समस्याएँ, सांस्कृतिक मूल्यों की समस्याएँ, आदि का निर्माण हुआ, वर्ग-संघर्ष की समस्याएँ, भ्रष्टाचार की समस्याएँ, हडतालों का आयोजन और तत संबंधी तोड-फोड की समस्याएँ आदि अनेकसी समस्याओं का निर्माण होता रहा।'[1]

साठोत्तरी कालखंड में सामाजिक समस्याओं के सभी आयामों का अत्यंत विकसित रूप देखनेको मिलता है। इन समस्याओं में सामाजिक यथार्थ के प्रति जागरूकता लक्षित होती है। समाज के विभिन्न सामाजिक समस्याओं का विशेष वर्णन इस कालखंड के उपन्यास में देखने को मिलता है।

'आज के जनजीवन में सामाजिक समस्याओं ने विविधमुखी रूप धारण कर लिया है। स्त्री-पुरूष संबंधों की विविध समस्याएँ, नयी-पुरानी मान्यताओं के बीच संघर्ष की समस्याएँ, पति-पत्नी के बीच के तनाव की समस्याएँ, शिक्षित-अशिक्षित बेटियों के विवाह की समस्याएँ, भ्रष्ट व्यवस्था के कारण शिक्षा संस्थाओं में योग्यता हनन की समस्याएँ, भाषागत समस्याएँ, भ्रष्टाचार की समस्याएँ, मकानों की

कमी की समस्याएँ, क्लबों और होटलों से निर्मित भ्रष्ट जिंदगी की समस्याएँ, पश्चिम की नकल से निर्मित समस्याएँ आदि विविध समस्याओं ने साठोत्तरी कालखंड को ग्रस्त कर लिया।"[2]

इसी पृष्ठभूमि पर हमें भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्या उपन्यासों में चित्रित समस्याओं पर विचार करना है। भैरवजी ने अपने उपन्यासों में समाज के सर्वहारा वर्ग की हिमायत की है। सर्वहारा वर्ग की वकालत करते समय उन्होंने कहीं संवेदना के स्तर पर तो कहीं संघर्ष के स्तर पर नारी शोषण की समस्या, विधवा समस्या, साम्प्रदायिक समस्या, औद्योगिकरण की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, अनुपयोगी शिक्षा प्रणाली और बेकारी की समस्या, विद्यार्थी अंदोलन की समस्या, वेठबिगारी आदि समस्याओं का चित्रण किया हैं। हम इन उपन्यासों में चित्रित समस्याओं पर यहाँ सोचेंगे।

उपन्यासकार ने संपूर्ण ग्राम्य जीवन को समग्र वास्तविकता के साथ चित्रित कर यथार्थ के -हासोन्मुखी तथा गतिशील रूप को सहज स्वाभाविक रूप में अंकित किया है।

वर्ग-संघर्ष की समस्या :-

अंग्रेजों की शोषण नीति का एक पक्ष था जमींदारी व्यवस्था को भारत में निरंतर रखते हुअे जमींदारों की सहायता से इस विशाल देश के उसी समय के चालीस करोड लोगों पर अधिराज्य जमाना। अपना उल्लू सीधा करने के लिए भारत को कृषिप्रधान देश के रूप में देखने में ही उनका फायदा था। राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेज, नगरों में पूंजीपति और गाँवों में जमींदार जनता का अमानवीय शोषण कर रहे थें। जमींदारी प्रथा को अपने स्वार्थ के लिए कायम रखने का श्रेय अंग्रेजों को है। आजादी के बाद राष्ट्रीय नेताओं ने गांव के जमींदार सामंतों को समाप्त करने की योजना बनाई। इस योजना द्वारा जमींदारी उन्मूलन का कानुन पारित किया गया।

आज जमींदारी का उन्मूलन हुआ है, जमींदार भी नहीं रहे हैं, फिर भी जमींदारों की पुरानी ऐंठन अभीतक शेष है। ये अपने पुरखों की परंपरा चलाना चाहते हैं। जोर-जुल्म से किसानों का शोषण करते हैं। ये धन पिपासू, जबरदस्त अहंकारी और विलासिताप्रिय होते हैं। "लगान वसूल करना, किसानों से बेगार लेना, बेगार से इन्कार करने पर किसानों की पिटाई करना, उनके घरों को जला देना, उनके स्त्रियों की अस्मत लूटना, झूठे इल्जाम थोंपकर किसानों पर झूठे मुकदमें दायर करना, कुर्की चढाना, नीलाम करना, पुलिस या सरकारी कर्मचारियों को रिश्वत देकर अत्याचार करना आदि विविध हथकण्डों को अपनाकर जमींदार गरीब किसानों का शोषण करते हैं।"[3] आज किसी जमींदारों के वंशज इस शोषण को नहीं अपना रहे हैं। भैरवप्रसाद गुप्तजी ने जमींदार-किसान वर्ग संघर्ष के माध्यम से जमींदारों की उपर्युक्त शोषण प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। रामदरश मिश्र के "पानी के प्राचीर", यादवेंद्र शर्मा "चंद्र" के "ठाकुरानी", शिवप्रसाद सिंह के "अलग-अलग वैतरणी", जगदीशचन्द्र के "धरती धन न अपना",

विद्या वाचस्पति के "जमींदार", रामदरश मिश्र के "आकाश की छत" आदि उपन्यासों में जमींदार द्वारा किसानों का शोषण दिखाकर वर्ग-संघर्ष की स्थिति का भी निर्माण किया गया है। ये उपन्यास भैरवजी के उपन्यासों की अगली कडियाँ लगते हैं। इस पार्श्वभूमि पर हम यहाँ भैरवजी के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित वर्ग-संघर्ष की समस्या को देखेंगे -

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "गंगामैया" में किसान और जमींदार वर्ग-संघर्ष को चित्रित किया है। "गंगामैया" उपन्यास की यह एक महत्वपूर्ण समस्या है। किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व मटरू करता है। मटरू गंगामैया की कुंवारी मिट्टी के दियर पर खेती करता है। मगर जमींदारों को यह बात पसंद नहीं हैं उनकी झाऊ और सरकंडों की कमाई मटरू के कारण खत्म हो जाती है। "बलिया" गांव के किसान मटरू के कारण अब जाग गये हैं और युगों-युगों से भारतीय जमींदार जमीनों के मालिक बनकर जो शोषण करते आये हैं उस पर मटरू ने रोक लगा दिया है। मटरू जानता है कानून और कायदे के अनुसार "दियर" देवी देन है, मगर अनभिज्ञ किसान और जनता यह भी नहीं जानती की ऐसी जमीन पर जमींदार को कर अथवा लगान लेने का कोई अधिकार नहीं है। मटरू ये बाते किसानों को समझाता है और यही कारण है कि किसान और जमींदारों में संघर्ष छिड जाता है।

"बलिया" गाँव में घाघरा नदी प्रतिवर्ष ऐसे दियर छोडती थी जिस पर बिना परिश्रम किए ही झाऊ और सरकंडे के घने जंगल उग आया करते थे। वहां के जमींदार इस घास को बिकवाकर अर्थ-लाभ करना अपना अधिकार समझते थे। वर्षों तक ये काम बिना किसी तकरार चल रहा था। मगर किसानों को अब "मटरू" जैसा शक्तिशाली, साहसी, बुध्दिमान, जागरूक नेता प्राप्त हुआ। मटरू के नेतृत्व में किसानों का संगठन तैयार हो गया है और सबने मिलकर जमींदारों के अन्याय, अत्याचार का मुकाबला करना शुरू कर दिया।

मटरू बुध्दिमान है। "दियर" की भूमि पर परिश्रम करके उसने छाती-छाती भर रबी फसल कर ली। मटरू के खेतों के अनुकरण पर तीरवाही के किसान भी दियर में खेती करना आरंभ करते हैं लेकिन अपने अज्ञान के कारण, उस दियर पर खेती करने के लिए जमींदार से न आज्ञा लेने के लिए जाते है न झाऊं सरकंडों का पैसा उन्हें देते इसी कारण से जमींदार और किसान संघर्ष छिड जाता है। मटरू को जमींदार खरीदना चाहते है मगर मटरू के इन्कार पर मटरू को डाके के जुर्म में फँसाया जाता है। मटरू को अपने साथियों के ताकत पर विश्वास है। उसे भी मंजूर है कि कोई भी लड़ाई अथवा संघर्ष अकेले लडना असम्भव है। इसी शक्ति का अनुभव करके मटरू करिन्हे से कहता हैं - "मटरू किसी जमींदार का कोई आसामी नहीं है। जिसे गरज हो, वही उससे आकर मिले।"[4] मटरू आगे यह भी कहता है कि - "कहाँ रखा था कायदा और कानुन अब तक। मैंने मेहनत की, फसल उगाई,

तो देखकर दाँत गड गए। चले है अब जमींदारी का हक जताने। आएँ न जरा हल कन्धे पर लेकर। दिल्लगी है यहाँ खेती करना। भोले किसानों को बेवकूफ बना कर रूपये ऐंठ लिये। बेचारे वे मेहनत करेंगे और मसनद पर बैठे गुलछर्रे उडाये जमींदार।"[5]

मटरू किसानों में चेतना जगाने का काम करता है वह किसानों को समझाते हुअे कहता है - "गंगामैया की छोडी जमीन पर जमींदारों का क्या हक पहुँचता है कि वे उस पर सलामी और लगान ले। जिसको जोतना-बोना हो, वह खुशी से जोते-बोए। जमींदारों से बंदोबस्त करने क्या जरूरत है? वे क्यों एक नयी रीति निकाल रहे हैं और जमींदारों का मन बिगाड रहे हैं ...।"[6]

जमींदार केवल मटरू से डरते हैं वे मटरू को अपनी ओर खिंचना चाहते हैं। मटरू ने किसानों का संगठन कर लिया है। मटरू किसानों को चेतित करते हुअे कहता है - "अब भी कुछ नहीं बिगडा, तुम लोग अपनी रकम वापस माँग लो। साफ कह दो कि हमें जमीन नहीं लेनी। यही होगा न कि एक फसल न बो पाओगे। अगले साल तो तुम्हें कोई रोकनेवाला न होगा। गंगामैया की गोद सब किसानों के लिए खुली पडी है। वहाँ भला धरती की कोई कमी है कि खामखाह के लिए तुम लोगों ने ले-दे मचा दी। यह याद रखो कि एक बार अगर जमींदारों को तुमने चस्का लगा दिया तो तुम्हीं नहीं तुम्हारे बाल-बच्चे भी हमेशा के लिए उनके शिकंजे में फँस जाएगें। उनकी लोभ की जीभ सुरसा की तरह बढती जाएगी और एक दिन सबको निगल जाएगी।"[7]

यहाँ गुप्तजी ने वर्ग-संघर्ष को दिखाया है जब तक मटरू जेल से बाहर है तब तक संगठन कार्य करता है मगर जब वह जेल में जाता है तब जमींदारों से लडने का काम उसका साला पूजन करता है।

यहाँ किसान-जमींदार संघर्ष संगठन शक्ति के बल पर ही शुरू किया जाता है। भैरवजी संगठन-शक्ति के पक्षधर हैं, जिन्होंने इसी संगठित बल के माध्यम से जमींदारों को पराजित किया है। पीढी-दर-पीढी की जमींदारों की दासता से किसान-मजदूरों को मुक्त करने का प्रयत्न किया है। भैरवजी ने अपने विचारों का वहन "मटरू" के माध्यम से किया है। पूजन मटरू के विचारों का वाहक लगता है। उसके मतानुसार - "यदि प्रत्येक सदस्य नेता के समान निर्भिक और साहसी बन जाए तो नेतृत्व की सफलता में कोई संदेह नहीं रह जाता। वास्तव में जमींदार और किसान वर्ग-संघर्ष को उचित दिशा देने के लिए और प्रचीन रूढियों में सुधार करने के लिए मटरू जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है।"[8]

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने अपने उपन्यास "मशाल" 1957 में मिलमालिक-मजदूर संघर्ष को उभारकर अपने प्रगतिवादी सिध्दांतों का प्रचारात्मक रूप में वर्णन किया है। इस वर्ग-संघर्ष को प्रस्तुत

करते समय उपन्यासकार ने अनुभूति की अपेक्षा बुध्दि का सहारा अधिक लिया है। गाँव में रहनेवाला उपन्यास का नायक नरेन के मन में बचपन से ही रूढी-ग्रस्त आचार-विचार के प्रति विद्रोह पनपता है। विषम आर्थिकता के कारण उसे अपनी भाभी सकीना और माँ को छोडकर भागना पडता है। स्वाधीनता की लडाई लडने के उपरान्त स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वह गाँव वापस लौटता है परंतु उसे न भाभी मिलती है न माँ। दु:खी नरेन कानपुर आ जाता है। नरेन के प्रगतिवादी मन में अवसरवादी नेताओं के प्रति बड़ी घृणा है जो जनता के चंदे का इस्तेमाल खुद के लिए करते हैं। इस उपन्यास में मजदूर अंदोलन का प्रगतिवादी दृष्टि से चित्रण किया गया है।

श्रमिक जीवन और उसके साम्यवादी विचारों और विश्वासों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने के कारण नरेन अपने जीवन के सुनेपन को विस्तृत कर अपने आप को शोषित और पीडित-वर्ग को समर्पित कर देता है। यही उसके जीवन में नवीन प्रगतिवादी चेतना का संचार होने लगता है तथा, "श्रम की गरिमा और श्रमिक वर्ग की सच्ची मानवीयता तथा विश्वविजयी शक्ति की अनुभूति उसकी आत्मा का उन्नयन करती है।

नरेन कानपुर आते ही श्रमिकों के शोषण के खिलाफ पूंजीपतियों से लडना आरंभ कर देता है। गुप्तजी ने श्रमिक मजदूरों की गरीबी, भूखमरी का जिंदा चित्रण यहाँ किया है। मजदूर के आठ-आठ घंटे काम करने पर भी गरीबी और भूखमरी का वे शिकार बन जाते हैं। गरीबी का शोषण उन पर होनेवाले अन्याय और अत्याचार का स्वरूप स्पष्ट करते हुअे शकूर कहता है - "मजदूर क्या है, उसके काम की कीमत क्या है, उसका संगठन क्या है, उसके संगठन का मतलब क्या है? जैसे-जैसे ये बातें मेरी समझ में आती गयी, मुझमें एक नयी जिन्दगी, एक नया जोश, एक नयी हिम्मत, एक नया बलबला, एक नयी ताकत, एक नई लडाई नया मकसद करवटें लेने लगा और मैंने मजदूर होकर अपने आप पहले से बदला हुआ इन्सान पाया।"[9] यहाँ अन्याय और अत्याचार से पीडित शकूर जैसे मजदूर इकट्ठा होकर अपने मजदूर भाई और श्रमिकों पर होनेवाले अत्याचार का मुकाबला करने का निश्चय करते हैं।

शकूर शोषण के विरूध्द आवाज उठाता है और सकीना से कहता है कि - "साहब लोग हजार रूपया महिना पाते हैं, लेकिन काम दो आने का भी नहीं करते, लेकिन हम मजदूर लोग आठ-आठ घंटे छाती फाडकर काम करते हैं, लेकिन हमें पेटभर खाना भी नहीं मिल पाता। शकूर, मंजूर, नरेन, सकीना, मदिना ये सभी पात्र भैरवप्रसाद गुप्तजी के प्रगतिवादी विचारों के वाहक लगते हैं। सकीना को शकूर के विचार तो भाते हैं मगर इसका दोष वह अपने नसीब को देती है तब शकूर के इस विचार से सकीना प्रभावित हुअे बिना नहीं रहती। शकूर कहता है - "नहीं सकीना, इसमें हमारी

किस्मत का दोष नही। इस राज का दोष है, जिसमें मेहनतकश भूखे मरते है और हुकूमत करनेवाले सरमायरेदार और उनके एजेण्ट बैठे-बैठे मजे उडाते हैं। पर अब जमाना बदल गया है। दुनिया के मजदूर अब जाग गये हैं। उन्होंने अपने हक अब समझ लिए हैं। अब देश-देश में उनका संगठन हो रहा है। उनका आंदोलन चल रहा है, सरमायदारी हुकूमत से लडाई हो रही है।"[10] शकूर, सकीना आदि के विचारों से, संगठन से ही हमें देखने को मिलता है कि - "लाख तकलिफों के होते हुअे भी संघर्षों में जुटे रहने में एक मजा आता है, अपने में ताकत बढती है, दिल और मजबूत होता है क्योंकि वह मशीन बनता है, मिल खडी करता है। मशीनें चलाता है, और सब कुछ पैदा करता है, आज दुनिया का मजदूर उसी शाह पर आगे बढ रहा है। हिन्दुस्तान का हर मजदूर उसी राह पर चलेगा। वह राह जिन्दगी की राह है, खुशहाली की राह है, तरक्की की राह है, उस पर चलनेवाला इरपात का बन जाता है और कभी भी हार नही खाता।"[11]

प्रस्तुत उपन्यास में नरेन सच्चा संघर्षशील मजदूर बन गया है जो चाहता है कि मजदूर पूरी मेहनत करके बेगार नहीं कर सकता पूंजीपतियों की क्रूर पाशविकता में नहीं अटक सकता अपनी रोजी-रोटी के लिए और अधिकारों के लिए मजूदरों को लडनाही पडेगा। वह मजदूरों को संगठित करके उन पर अन्याय, अत्याचार, शोषण का मुकाबला करना चाहता है। मजदूर संगठन से परिस्थिति में आया हुआ बदलाव के फलस्वरूप प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुअे नरेन कहता है - "अब यह लूट का बाजार बहुत दिनों तक नहीं चल सकता अब हम भी कुछ-कुछ लूट को समझने लगे हैं, हम भी अपने हक, अपनी मेहनत, अपनी ताकत, अपनी मुहब्बत, अपनी इज्जत-आबरू को समझने लगे हैं। इस समझ का नतीजा आज हप्ते से चली आ रही हमारी हडताल है। नरेन स्वयं इस हडताल का नेतृत्व करता है। उसके साथ नरेन स्वयं हडताल में शामील है। नरेन कहता है - "मैं यह लड़ाई अपने खुन की अन्तिम बूँद तक लडुँगा, क्योंकि जीवन मुझे दुनिया की हर चीज से ज्यादा प्यारा है। प्यारा इसलिए नहीं, कि उससे मुझे मोह है, बल्कि इसलिए कि वह संसार की सबसे अनमोल वस्तु है, उससे उसकी शक्ति से हम दुनिया की, इतिहास की वह सबसे बडी लडाई लड़ते हैं, जो दुनिया को हमेशा के लिए खुशहाल कर देगी, इन्सान-इन्सान की जिन्दगी को हमेशा-हमेशा के लिए खुशहाल कर देगी, इन्सानियत के माथे से शोषण के कलंक को धो देगी, इन्सान-दुश्मनों के पैदा किए हुअे दु:ख, गम, आँसू, भूख, गरीबी, नंगेपन को मिटा देगी, समाज शत्रुओं की पैदा की गयी दुश्मनी, अविश्वास, नफरत, गुस्से, इर्षा, धोखें, चोरी, लुट और व्यभिचार को समाप्त कर देगी।"[12]

नरेन के विचारों से सभी लोग प्रभावित होकर हप्तेभर हडताल करते हैं। इस हडताल में स्त्री-पुरूष मजदूर शामील होते हैं। श्रमिक संगठन शक्ति का महत्व विशद करते हुअे भैरवजी ने

अपने उपन्यास की भूमिका में लिखा है - "मजदूरों के इस संयुक्त मोर्चे की आवाज कानपुर के मजदूर आंदोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगी। आठ मजदूर शहीदों और सत्तर घायल मजदूरों के लाल खुन से कानपुर के मजदूरों ने जो जंगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे की मशाल जलायी है, वह कभी न बुझेगी। उसकी लाल रोषनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायेगी और जनता के सभी शोषित वर्गों को भी इन्कलाबी एकता की लडी में पिरो कर उसे मजदूरों के इन्कलाब का रास्ता दिखयगी...।"[13]

यहां मजदूर संगठन के द्वारा पूंजीपति कल कारखानदारों के अन्याय अत्याचार पर विजय पायी है। मजदूर का फैलाव मजदूरों का शोषण कम करने में कामयाब हो सकेगा इस प्रकार का विश्वास भी लेखक ने स्पष्ट किया है।

"मशाल" में घटनाओं तथा पात्रों का चयन श्रमिक वर्ग के जीवन के साथ जोडकर लेखक ने इस श्रमिक वर्ग की बढती हुओ शक्ति, संघर्ष की प्रवृत्ति और प्रगतिवादी चेतना को पकडने का प्रयत्न किया है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के "सती मैया का चौरा" 1959 में जमीदारों के अत्याचार, इन अत्याचारों के खिलाफ किसान-जमीदार संघर्ष आदि पर प्रकाश डाला गया है। इस उपन्यास में पराधीनता से लेकर 1951 तक के भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आयामों को प्रगतिवादी दृष्टिकोण से चित्रांकित किया है।

उपन्यास के नायक मन्ने है। इसी पात्र के माध्यम से उपन्यास की कथा प्रवाहित होती है। मन्ने की कथा के साथ-साथ एक अर्न्तकथा भी है जो गाँव के तीन पीढियों से होनेवाले किसान और जमीदारों के संघर्ष को स्पष्ट करती है। जमीदार सुगंधराय किसानों से लाठी और जुतों के बल से हर वर्ष दूगना लगान वसूल करता है। वह कहता है - "आज से लगान की दर डयोढी की जारही है- अगर किसी ने किसी तरह उज्र किया तो उसका सिर तोड दिया जायगा।"[14] गाँव के समस्त वर्ग, सम्प्रदाय, जातियाँ परस्पर मिलकर जमीदार के विरूध्द जमीदारों के अत्याचारों के विरूध्द संघर्ष करते हैं। गुलाम हैदर अपने वर्ग-हित के लिए गाँव के किसानों का नेतृत्व करता है। सम्पूर्ण किसान एकत्र होकर जमकर संघर्ष करते हैं, जिससे सुगंधराय पराजित हो जाता है। सुगंधराय "जवार" गाँव अपनी लडकी को दहेज में दे देता है। परिणमस्वरूप यह गाँव कई-बार जमीदारों में खरीदा-बेचा जाता है। गुलाम हैदर एक बार फिर गाँव वालों को अपने अधिकार के लिए संघर्ष करने के लिए एकत्रित करके काजी से कहता हैं - "यह गाँव हमारा है - इसे बेचने या खरीदने का हक किसी को नहीं। हम एक कौडी लगान किसी को नही देंगे।"[15] पुनः किसानों और जमीदारों में ठन जाती है। जवानों को चारों ओर से होर कर मारा जाता है। इस संघर्ष में अभिमन्यु और गुलाम हैदर की मौत हो जाती है।

जमींदार इस युध्द में पराजित लोगों का शोषण अधिक तेजी से करते हैं। गुलाम हैदर का बेटा बडा होकर पुनः जमींदारी शोषण के विरूध्द मोर्चा संभालता है। गाँव जीत जाता है। डॉ. कुवरपाल सिंह का कहना है - "वर्ग-संघर्ष भावावेश नहीं है। यह संघर्ष बहुत लम्बा होता है। इसमें हार-जीत साथ-साथ रहती है। इसका अन्त तब तक नहीं हो सकता जब तक किसान मजदूरों की सरकार नहीं बनती। किसानों ने पीढी दर पीढी अनवरत संघर्ष किया पर उनकी दशा में सुधार नहीं हुआ।"[16] किसानों ने सोचा था कि जब देश स्वतंत्र होगा तथा कांग्रेसियों का राज्य आयेगा तो उन्हें अपने परिश्रम का फल मिलेगा, लेकिन वह जहाँ के तहाँ ही रह गये। मन्ने कहता है - "आजादी के बाद जो उम्मीदें वे बांधे हुअे थे, उनमें क्या एक भी पूरी हुई है? तुम किसी भी किसान या मजदूर को ले लो, उसके घर को जाकर देखो, उसके तन के कपडे दोखो, उससे पूछकर समझो को उनमें क्या परिवर्तन आया हैं? जमींदार न रहे तो अब स्थानीय कांग्रेसी नेताओं ने उनकी जगह ले ली है, और किसानों पर उन्हीं की तरह हुकूमत करते है।"[17]

इस प्रकार स्वाधीन भारत का मजदूर और किसान विकासात्मक परिवर्तन की केवल प्रतिक्षा ही करता रह जाता है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "आग और आंसू" में जमींदार-किसानों के बीच वर्ग-संघर्ष को चित्रित किया है। जमींदार किसानों का मनचाहे ढंग से शोषण करते हैं। शोषण करने की क्रिया लगातार चल रही है। बडे सरकार गाँव के छोटे-छोटे किसानों का शोषण करते हैं। बडे सरकार के पास वैभव-विलास के जो भी साधन हो सकते हैं वे सभी बडे सरकार के पास है मगर फिर भी वे किसानों का शोषण करते हैं। बैंगा के घरवालों को हमेशा के लिए एक बिघा जमीन माफी के रूप में देकर बडे सरकार ने उसे अपना गुलाम बना लिया गया है। बैंगा के घरवाले उत्तराधिकारी के रूप में बडे सरकार के यहाँ गुलामी करते हैं। किसानों की इस स्थिति का वर्णन करते हुअे लेखक कहता हैं - "लगान चुका देने के बाद किसान अपने-अपने खेत पर अपना नैतिक अधिकार समझते है लेकिन जमींदार ऐसा नहीं समझते। उनके लिए मोल-तोल का यही वक्त होता है, लगान बढाने का यही मौका होता है, लगान वसूल करने के लिए धरपकड होती है, मार पडती है, गाय-बैल खोल लिए जाते हैं, घर का सारा सामान लूटा जाता है - हर साल यही कहानी दुहरायी जाती हैं, नयी होकर, नया खुन पीकर, नये जोर-जुल्म की ताकत पर यह कहानी एक साल खुब मजे से चलती है। हर जेठ में इसे नया जीवन मिलता है।"[18]

गुप्तजी ने संपूर्ण ग्राम्य जीवन को उसकी समग्र वास्तविकता के साथ चित्रित किया है। यद्यपि गांव में छोटे-मोटे व्यवसाय होते हैं परंतु गाँव का आर्थिक ढाँचा बहुत कर फसलों पर ही निर्भर

करता है, किन्तु हर फसल के साथ कुछ-न-कुछ आफत जुडी रहती है। इसी फसल पर भिखारी से लेकर महाजन, जमींदार और शासक वर्ग की आँखे गडी रहती हैं।

मगर उपन्यास का प्रगतिशील चेतना से संपन्न पात्र चतुरी अब जमींदारों का विरोध करता है, इसके लिए उसे जेल में भी जाना पडता है मगर फिर भी वह जमींदार, महाजनों का मुकाबला करके सभीमें प्रगतिवादी चेतना भरना चाहता है। जब उसे पुलिस पकड ले जाती है तब चतुरी की महानता का परिचय देती हुअी नगेसर की औरत कहती है - "आसमान में चाँद-सूरज भी एक-एक ही है चाची, चतुरी देवर एक दिन, तुम देखना मैं कहती हूँ, हमारे गाँव में उजाला फैलेगा।"[19]

यहाँ चतुरी शोषण के विरूध्द लडनेवाला, नयी पीढी का नया आदमी है जो स्वयं तो शोषण के खिलाफ आवाज उठाता है और दूसरों को भी चेतित करता है। पुश्त-दर-पुश्त की गुलामी को वह तोडना चाहता है। संगठन शक्ति के माध्यम से वह बडे सरकार से वर्ग-संघर्ष शुरू करता है। इसी प्रकार से असंख्य लोगों का शोषण किया जाता है। अधिकांश किसान जमींदार के आसामी थे। संपूर्ण कृषक समाज के सम्बन्ध में उपन्यास का प्रगतिशील पात्र चतुरी बैंगा से कहता है - "जिस पानी से रातभर उसे (बडे सरकार को) तरी मिलेगी, उसमें कितना हमारा पसीना.... मिला हुआ है।"[20] गाँव के ये सारे महल गिने चुने बडे महजनों को छोडकर विभिन्न जातियों और स्तरों के लोगों के खून-पसीने पर निर्मित हैं।

उपन्यासकार ने संपूर्ण ग्राम्य जीवन को समग्र वास्तविकता के साथ चित्रित कर यथार्थ के -हासोन्मुखी तथा गतिशील रूप को सहज स्वाभाविक रूप से अंकित किया है।

निष्कर्ष :-

भैरवप्रसाद गुप्तजी के आलोच्य उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष दो प्रकार का दिखाई देता है। "गंगामैया", "सती मैया का चौरा", "आग और आंसू" आदि उपन्यासों में जमींदार-किसान के बीच तो "मशाल" में मिल-मालिक-मजदूर के बीच वर्ग संघर्ष दिखाया है। भैरवजी प्रगतिवादी विचारधारा के पक्षधर होने के नाते उनकी सहानुभूति हमेशा गरीब सर्वहारा मजदूरों एवं मिल-मजदूरों के पक्ष में रही है। भैरवजी इन लोगों का जमींदार और पूंजीपतियों के द्वारा होनेवाला शोषण थमाकर वर्ग-विहीन समाजरचना का सपना देखना चाहते हैं। भैरवजी शायद यह चाहते है कि विकास के मार्ग में संघर्ष आवश्यक है। इन लोगों में संगठन शक्ति के महत्व के आधार पर वे चेतना जागृति का काम करते है और वर्ग-संघर्ष का निर्माण करते हैं। इस वर्ग-संघर्ष के अगुआ उनके नायक भैरवजी के विचारों के वाहक लगते है। उनके नायक संगठन शक्ति के महत्व के आधार पर धीरे-धीरे संघर्ष की मशाल आम जनता में फैला देते है।

नारी शोषण :-

भारत में पुरूष-प्रधान संस्कृति के परिणामस्वरूप नारी को गौण स्थान मिला है। आजादी के संघर्ष में उसे घर से बाहर जाने का अवसर मिला। आजादी के पश्चात नारी को वैधानिक समानाधिकार मिले फलतः ग्रामीण, खेतीहर, शहरी, कस्बाई, आम औरतों को परिवर्तन की अच्छी पृष्ठभूमि मिली। इतना होकर भी भारत की औसत नारी आज भी सामाजिक दृष्टि से अधिक पिछडी नजर आ रही है। वह आज भी अपने हकों और कर्तव्यों से अनभिज्ञ है परंतु सन 1975 के "महिलावर्ष" से उसे अपने हकों और हितों की असली पहचान हुअी। आज भी शिक्षित-अशिक्षित, अर्धशिक्षित नारी पुरूष के संरक्षण में पलने में ही अपना हित समझती है। आज नारी की स्थिति में कोई बदलाव की स्थितियों का निर्माण नहीं हो रहा है। फलस्वरूप नारी का शोषण आज भी होता जा रहा है।

विधवा-नारी, वेश्या-नारी, मजदूर-नारी, बलात्कारित नारी आदि के विभिन्न रूप नारी शोषण के कअी आयाम हमारे सामने रखते हैं।

प्रस्तुत प्रबंध में भैरवप्रसाद गुप्तजी ने नारी शोषण के विभिन्न अंगों पर कैसे चिंतन किया है इस पर हम प्रकाश डालेंगे।

"मशाल" 1951 भैरवप्रसाद गुप्तजी का प्रगतिवादी लेखन परंपरा का प्रथम उपन्यास है। इसमें सर्वहारा वर्गीय संघर्ष को पहली बार विस्तृत वाणी मिली है।

"मशाल" की नारी पात्र सकीना ब्रिटीश पुलिस अफसरों के अत्याचार का शिकार बन जाती है। जपानियों द्वारा पराजित अंग्रेजी सरकार भारतीय जनता पर क्रूर, अमानवीय अत्याचार करती है और सन 1942 के भारत छोडो आंदोलन से तो और भी आदमखोर हो जाती है। भारतीय क्रांन्तिकारी भी डंटकर अंग्रेजों का मुकाबला करते हैं। अंग्रेजों के पैर उखडने लगते हैं। अलिम कहता है - "अब हम आजाद है अम्मा। हमने गुलामी के एक-एक गढ को तोड दिया अब्बा। जुल्मों के अड्डे, थानों, चौकियों और कवहरियों के शोलों में खडे-खडे जलाकर हमेशा के लिए उनका नामोनिशान मिटा दिया। अंग्रेजी हुकूमत की एक-एक एजेण्ट को कैद कर लिया। अब हम आजाद है।"[21] मगर स्वराज्य के आंदोलन को ब्रिटिश सम्राज्यवादी निर्ममता से दबा देते हैं। आमीम को गोलियों से भुन दिया जाता है, उसके माँ-बाप को पेड से बांधकर कोडे लगाये जाते हैं और सकीना पर पूरी बटालियन के गोरे लोग बलात्कार करते हैं।

सकीना के माध्यम से यहाँ नारी शोषण पर प्रकाश डाला गया है। नरेन जब परिस्थिति से तंग आकर गाँव छोडकर भागता है तब सकीना अकेली रह जाती है। सकीना का पति अलिम स्वतंत्रता

संग्राम में भाग लेने के कारण गोलीयों का शिकार बन जाता है। सकीना के साथ पूरी बटालियन बलात्कार करती है। सकीना की जब आँख खुली - "तो उसका सारा शरीर दर्द के मारे ऐंठ रहा था। ठुड्डी, होंठ, गालों, छातियों और कमर में जख्मों का दर्द हो रहा था। उसने हाथ से गालों को छुआ तो मालूम हुआ कि वे कई जगह कट गये हैं। उँगलियों का स्पर्श पाकर जख्म छनछना उठे। उसने उँगलियों को हटाकर देखा, तो खुन। फिर उसे लगा कि उसके सारे कपडे भीगे हुअे हैं। उसकी समझ में न आया कि ऐसा क्यों हुआ है। उसके कपडों पर काले-काले धब्बे पड गये थे। उसने उसे बिल्कुल आँखों के पास ला कर देखा, तो मालूम हुआ कि वे खून के धब्बे थे। उसका कलेजा दहल गया। जब सामने देखा तो छै गोरे नींद में बेहोश पडे हुअे थे। उनके आस-पास खाली बोतलें, सिग्रेट और दियासलाईयों के बक्स पडे हुअे थे।"[22]

सकीना को अपने पेट के लिए मजदूरी करनी पडती है। सामाजिक वैषम्यजनक आर्थिक विपन्नता के कारण सकीना अत्याचारियों का शिकार बनती है। इसी अत्याचार, अन्याय और अपने शरीर के प्रति खिलवाड करनेवाले अत्याचारियों के प्रति सकीना अब जाग चुकी है। मंजूर के साथ रहकर वह "डिसूझा"साहब के घर में काम करती है परंतु डिसूझा के शिकार बनने की अपेक्षा वह वहाँ से भाग तो निकलती है परंतु "झम्मन" जैसे ठेकेदार के हाथ लग जाने से अब सकीना "बेला" बन गयी। बेला अब दिनरात ग्राहकों के हाथ से न छूटती। तडपता हृदय, कराहती आत्मा और उबलते हुअे आसूओं के बीच अब बेला पत्थर का टूकडा बन गयी। बेला के पास जो भी था, जो भी ग्राहक ले सकते थे वह सब खो चुकी। मगर एक दिन जब अखबार वाले से हिटलर की हार और रूस की जीत की बात सुनकर सकीना कहती है - "वह जालिम हार गया। वह इन्सानों का खुन पीनेवाला हार गया। वह मजदूरों का दुश्मन हार गया। मेरे बहादुर भाइयों की जीत मेरी जीत है। अब मुझे एक नयी जिन्दगी मिलेगी। हर मजदूर को नयी जिन्दगी मिलेगी। खुशहाली, तरक्की, अमन की दुनिया ने एक नयी आजादी हासिल की है।"[23] सकीना प्रगतिवादी विचारों का नारी पात्र है। हिटलर की हार और रूस की जीत से उसे खुशी है क्योंकि उसके साथ भी हिटलर जैसे पूंजीपतियों ने ही अन्याय, अत्याचार किया है।

सकीना की भेंट जब दूबारा नरेन से होती है तो नरेन सकीना पर किये गये और सकीना जैसे मजदूर औरतों पर किये गये अन्याय का मुकाबला करने की चाह प्रकट करते हुअे कहता है - "आज हमारे देश के गरीब, लुटे हुअे इन्सान भी उसी राह पर आगे बढते हैं। एक जमाना आयेगा, जब हम अपने देश में भी ताकद से इन डाकुओं को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म कर यह लूट का बाजार उठा देंगे। हमारी भी इज्जत होगी। उस वक्त वे गोरे फौजी न होंगे, जो तुम जैसी मासुम औरतों पर जुल्म करें, उस वक्त वह साहब न होगा जो तुम जैसी बेबस औरतों पर बन्दुक लेकर हमला करें, उस वक्त वह

गुण्डा न होगा जो तुम जैसी भटकी औरत को भगा ले जाए, उस वक्त वह अड्डा न होगा जहाँ तुम जैसी देवी को अस्मत बेचने के लिए मजबूर किया जाए। भाभी, वह जमाना सच्चे इन्सानों का जमाना होगा, सच्ची जिन्दगी का जमाना होगा, सच्ची मेहनत का जमाना होगा, सच्ची मुहब्बत, इज्जत और आबरू का जमाना होगा। इसलिए आज के दुनिया के गरीबों और इमानदार इन्सानों का यह सबसे बडा फर्ज है कि वे उस जमाने को लाने के लिए जो लडाई चल रही है, उस लडाई को लडें, उस लडाई को कामयाब बनाने के लिए अपना सब-कुछ कुरबान कर दें। तुम्हें, हमें सबको इस लडाई का सैनिक बनना है।"[24]

यहाँ सकीना जैसी नारी अपने ऊपर हुअे अन्याय का मुकाबला करने के लिए अंत में एक प्रगतिवादी नारी बन जाती है। प्रगति को ओर ले जानेवाले सभी रास्ते अपनाती है। हडताल में, अंदोलन में हिस्सा लेती है और साथ-ही-साथ एक श्रमिक मजदूर पात्र की भूमिका भी निभाती है। यहाँ सकीना की मानस्किता को लेखक ने प्रगतिवादी दृष्टि से ऊपर उठने का प्रयत्न करके उसे अन्याय, अत्याचार के विरूध्द संघर्ष करने के लिए खडा कर दिया है। सकीना का चरित्र मशाल की अन्य नारियाँ मदिना तथा प्रभा से अलग लगता है। गांव की भोली-भाली नरेन की भाभी और शहीद अलीम की पत्नी सकीना धीरे-धीरे प्रगतिवादी विचारधारा का एक अभिन्न अंग बन जाती है। बलात्कारित नारी में चेतना जागृति करके नारी शोषण के आयाम पर लेखक ने अच्छे ढंग से सोचा है।

आज भी भारत में नारी का विधवा के रूप में भयंकर शोषण होता जा रहा है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में विधवा की कारूण्यपूर्ण स्थिति पर अनेक प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने विचार किया है। विधवा का शोषण, रिश्तेदारों से उसे मिलनेवाली घुडकियाँ, उसका ढूंठ जैसा उपेक्षित जीवन, उसकी आभावग्रस्तता आदि पर सोचकर विधवा-विवाह का समर्थन किया है। भगवती चरण वर्माजी का "चित्रलेखा", भैरवप्रसाद गुप्तजी के "गंगामैया", नागार्जुन के "कुंभीपाक", भगवती चरण वर्मा के "सामर्थ और सीमा", यादवेंद्र शर्मा "चंद्र" के "एक कली दो रंग", मोहन राकेश के "अंतराल", राजेंद्र शर्मा के " जनम जनम का विश्वास" शिवानी के 'रतिविलाप' आदि उपन्यासों में विधवा समस्याओं के विविध पहलुओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है। भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "गंगामैया" में विधवा विवाह का समर्थन करके प्रगतिवादी दृष्टिकोण के साथ इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है।

"गंगामैया" में "विधवा समस्या" एक सामाजिक समस्या है। भारत में विधवा नारी हमेशा उपेक्षित और प्रताडित रही है। भैरवप्रसाद गुप्त का उपन्यास साहित्य प्रगतिवादी होने के कारण उन्होंने हरवक्त किसी-न-किसी समस्या को उठाकर उसका समाधान भी ढूंढा है। "गंगामैया" 1953 में प्रकाशित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें प्रस्तुत रूप से विधवा समस्या को उठाया गया है। गुप्तजी

के "गंगामैया" की नायिका विधवा और जवान भाभी है। भाभी के माध्यम से हिन्दु विधवा की दयनीय अवस्था का चित्रण किया गया है। हिन्दू समाज में विधवा का जीवन व्यर्थ माना गया है। गुप्तजी ने विधवा का वर्णन सही रूप में प्रस्तुत किया है - "विधवा का जीवन एक ठूँठ की तरह है, जिसपर कभी हरियाली नहीं आने की, कभी फल-फूल नहीं लगने के - व्यर्थ, बिल्कुल व्यर्थ, धरती का व्यर्थ भार। हाँ, ठूँठ का बस एक ही उपयोग होता है। उसे काटकर लावन में जला दिया है।"[25] विधवाओं की शोषित स्थिति ठीक नहीं है। उन्हें किसी भी मंगल कार्य में सम्मिलित होने नहीं दिया जाता, सभी कार्यों से उन्हें अलग रखा जाता है केवल घरेलु काम करना अपनी उदरपूर्ती किसी तरह से करना यही उनकी जिन्दगी होती है। घर में बडों की सेवा करना, घर का सारा कामकाज करना, आँखों से टपटप आँसू बहाना यही उनका जीवन रहता है। गंगामैया की विधवा भाभी का वर्णन करते हुए गुप्तजी ने लिखा है - "दुबली-पतली, सुखी-देह, बेआब पीला चेहरा, उदास, आँसूओं में सदा तैरती-सी-आँखें, मुरझाये-सिले-से होंठ, रोएँ से जैसे करूणा टपक रही हो, एक जिन्दगी की जैसे मुर्दा तस्वीर हो, या जैसे एक मुर्दा जिन्दा होकर चल फिर रहा हो।"[26] आज हमारे समाज में विधवा की दूसरी शादी नहीं की जा सकती मगर किसी पुरूष के पत्नी की मृत्यु हो जाती है तो वह तुरंत शादी कर लेता है। भारतीय नारी की स्थिति ऐसी नहीं है, उसे आजीवन वैधव्य का बोझ ढोना पडता है। उसे सबकुछ सहना पडता है इस सम्बन्ध में लेखक कहता है - "समाज में चली आयी रीति, समाज के थोथे रिवाज, सडी-गली एक रूढि, कुल की एक झूठी मर्यादा के दम्भी पुजारी माँ-बाप आज अपने खूनी जबडों में एक फूल सी-सुकुमार, गाय-सी निरीह, रोगी-सी दुर्बल, निहत्थी-सी अपनी रक्षा करने में बेबस, कैदी-सी-गुलाम, सुबह के आखिरी तारे-सी अकेली युवती को दबाकर चबा डालना चाहते है।"[27]

विधवा विवाह का समाधान गुप्तजी ने "गंगामैया" में किया है। गुप्तजी ने मटरू जैसे क्रान्तिकारी पात्र का निर्माण करके इस समस्या के समाधान को तलाशने का सफल प्रयास किया है। मटरू गोपी के पास अपनी विधवा भाभी से विवाह कर देने का क्रान्तिकारी सुझाव प्रस्तुत करता है और कहता है - "तु उसे अपना ले, बडा पुण्य होगा, भैया। कसाई के हाथ से एक गऊ और मिस्कार के हाथ से चिरई बचाने में जो पुण्य मिलता है, वही तुझे मिलेगा। बाहदूर ऐसे मौके पर पीठ नहीं फेरते।"[28] विधवा से विवाह करने के लिए गोपी में हिम्मत बंधाते हुअे मटरू कहता है - "तू जवान आदमी है। अबे तुझे डर काहे का? हिम्मत चाहिए, बस हिम्मत। हिम्मत के आगे दुनिया झुक जाती है।"[29] गोपी अपने भाभी की राय जानने के लिए उध्दत हो जाता है तब भाभी कहती है - "हमारा समाज, हमारी बिरादरी, हमारे माँ-बाप ऐसा कभी नहीं होने देंगे।"[30] गोपी प्रगतिवादी विचारों का पात्र होने के कारण किसी की चिन्ता न कर अपने माता-पिता के सामने अपने और भाभी के विवाह का प्रस्ताव रखता है

जब ये बात माता-पिता को मालूम हो जाती है तो उनके क्रोध के ज्वालामुखी फूट पडते हैं - "मेरे जीते-जी तूने यह बात फिर मुँह से निकाली.....,तो.... तो... तू सुन ले। वह मेरे घर की देवी हो सकती है, लेकिन बहू, बहू.... वह मानिक की ही रहेगी।"[31] गोपी सोचता है - एक चली आई खोकली रीति, समाज का थोथा रिवाज, सडी-गली एक रूढि, कुल की एक झूठी मर्यादा के दम्भी पुजारी माँ-बाप आज अपने जबडे में आज अपने खूनी जबडे में एक फूल-सी सुकुमार, गाय-सी निरीह, रोगी-सी दुर्बल, निहत्थी-से, अपनी रक्षा करने में बेबस, कैदी सी गुलाम, सुबह के आखिरी तारे-सी अकेली युवती को दबाकर चबा डालना चाहते है।"[32]

अन्त में मटरू की सहायता से गोपी का विवाह भाभी के साथ हो जाता है।

प्रेमचंद काल से विधवाओं के शोषण के विविध आयामों का उद्घाटन हिन्दी उपन्यासों में हुआ है। लेकिन विधवा जीवन में आये हुअे नवजागरण का समर्थन करने सफल प्रयत्न साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासकारों ने किया है।

आज विधवाओं के पुनर्विवाह हो रहे हैं परंतु ऐसे विवाहों को संपन्न करने के लिए रूढी परंपराओं के खिलाफ विद्रोह करके उसे तोडना पडता है। यही बात लेखक ने यहाँ विषद की है। लेखक ने भाभी के यहाँ काम करनेवाले निम्नवर्गीय हलवाहा के द्वारा भी विधवा-विवाह का समर्थन किया है। भाभी के घर के कट्टर लोगों के साथ पाठकों का परिचय करा देकर लेखक ने यह दिखाया है कि परंपराओं से चिपके और रूढियों से ग्रस्त समाज को प्रगतिवादी जीवनदृष्टि देना सरल काम नही। सुधार कार्य में साहस की अवश्यकता होती है। वही साहस मटरू और गोपी में ठुंसने का काम लेखक ने किया है। भैरवजी अपने उपन्यासों में केवल समस्याएँ ही प्रस्तुत नहीं करते बल्कि प्रस्तुत समस्याओं का सफलता के साथ हल ढूँढने का प्रयत्न भी करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास मे विधवा जीवन की दयनीय स्थिति एवं गति पर लेखक ने प्रगतिवादी दृष्टिकोण से सोचा है और विधवा विवाह का समर्थन किया है। लगता है कि विधवा-विवाह संपन्न हुअे बगैर विधवा-समस्या का अंत नहीं हो सकता है।

"सती मैया का चौरा" 1959 में लेखक ने पिछडे बिरादरी में पली नारियों के शोषण की व्यथा को वाणी देने का प्रयत्न किया है। समाज में छोटी-बडी जातियों में पारस्पारिक यौन संबंध स्थापित किये जाते हैं। गाँव की छोटी जातियोंवाली स्त्रियों पर प्रायः राजनीतिक नेता, पुलिस, जमीदार, महाजन अपना अधिकार जताकर उनपर अत्याचार एवं उनका शोषण करते रहे हैं। "सती मैया का चौरा" में लेखक ने इसी तत्थ को चित्रित किया है। पिअरी गाँव में दिन-दहाडे तेलीआने से गुजरनेवाली चमार की बेटी कैलासिया को नंदराम का लडका किशन जबरदस्ती उठा लेता हैं और उसपर बलात्कार करता है। तो कभी मन्ने गाँव की बसमतिया को अपने प्यार का शिकार बनाता है। बसमतिया हीन जाती

की है मगर फिर भी मन्ने के साथ उसके यौन सम्बन्ध हैं। मन्ने की पत्नी को मन्ने का बसमतिया से मिलना-जुलना और लेन-देन पसंद नहीं और यही कारण है कि वह एक दिन दोनों को रंगेहाथ पकड लेती है। बसमतिया को मन्ने की पत्नी चीढकर बहुत पीटती है। इस स्थिति में बसमतिया की माँ बडे आदमियों के दुर्व्यवहार पर प्रकाश डालते हुअे कहती है - "आपने लडकी रखी हैं, इसकी परबस्ती का इंतजाम कर दो।.... लडकी आप के पास सोई है कि कोई ठठ्ठा है आप इस तरह से हमें निकालेंगे तो पंचायत है, कचहरी है।"[33]

यहाँ लेखक ने बडी संपन्न जातियों में पले लोगों की निम्नवर्गीय स्त्रियों की तरफ बुरी तरह देखने की दृष्टि एवं उनकी अस्मत को लूटने की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार का नारी शोषण केवल आर्थिक विषमता एवं वर्गीय विषमता के फलस्वरूप भयंकर रूप धारण करता है। भैरवजी वर्गभेद को मिटाकर आर्थिक साम्य के पक्षधर होने के कारण यहाँ उन्होंने निम्न वर्गीय नारी शोषण को वाणी देने का काम किया है। आज भी निम्नवर्गीय नारियों की इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आ पाया है।

भारतीय नारी शोषण के विविध आयाम हमें देखने को मिलते हैं। पौराणिक काल से ही स्त्रियों का शोषण अनेक रूपों में होता आ रहा है। संसार के उपन्यास साहित्य में स्त्री की समस्या एक सर्वकालीन विषय बन बैठी है। सामाजिक तथा राजनीतिक अंदोलनों के फलस्वरूप उस शोषण के खिलाफ विद्रोह की भावना समाज में जागृत हो उठी। घर और बाहर दोनों क्षेत्रों में आज नारी का शोषण तेज गति से होता जा रहा है। प्रगतिवादी लेखक भैरवप्रसाद गुप्तजी ने पुरूष-प्रधान संस्कृति के फलस्वरूप घर में होनेवाला नारी का दयनीय शोषण "नौजवान" 1972 में चित्रांकित किया है। हमारी संस्कृति पुरूष प्रधान संस्कृति होने के कारण घर में नारी का स्थान अत्यंत गौण माना जाता है। नारी केवल घरेलू कामकाज ही है, ऐसी धारणा अब भी पनपती जा रही है। गुप्तजी ने प्रस्तुत उपन्यास "नौजवान" में नारी की घरेलू दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

"नौजवान" में चित्रित भरत की माँ इसी संस्कृति का शिकार है। भरत के पिताजी जनसेवक होने के कारण उनके घर रात-बेरात चार-पाँच लोग आ जाते तो पिताजी तुरंत माताजी को भोजन बनाने का आदेश देते- माताजी और पिताजी के अनबन का कारण भी ज्यादा तर यही रहा है। दिनभर की थकी-हारी माताजी पर यह काम बडा भारी पडता था लेकिन पिताजी कहते हैं - "भाई, मैं एक जनसेवक हूँ। लोग मेरे यहाँ आयेंगे तो मैं उनका सेवा-सत्कार करूँगा ही। आखिर मुझे भी तो कहीं आना-जाना होता है, लोग मेरा भी तो सेवा सत्कार करते हैं। यह मामूली बात तुम क्यों नहीं समझती?"[34] इस पर माताजी अधिक बातें न करती चुपचाप सिर झुकाकर सिसकने लगती और कहती है

- "मैं मर जाउंगी तो लोग देखेंगे कि आप कैसे उनका सेवा-सत्कार करते हैं?"[35] माताजी के इस हालत को देखकर जब भरत रोने लगता तब माँ कहती - "तु मत रो, मेरे लाल। एक तु ही तो मेरी आँखों का तारा है। तेरा पालन-पोषण मैंने अपने खून-मांस से किया है। तू जल्दी बडा हो और पढ-लिखकर कोई नौकरी कर। मैं तेरी बहु लाऊँ और थोडा आराम करूँ।"[36]

भरत की माँ दिनभर रोती रहती, महजनों और ठाकुरों का आटा पीसती, धान कुटती इन्हीं कामों के लिए उन्हें जो मजदूरी मिलती, अनाज और सब्जियाँ मिलती उसीसे वे घर का सारा खर्चा उठाती और परिवार चलाती। माताजी गँवार है परंतु समझदार जब भी पिताजी उससे कुछ उल्टी-सीधी बातें कहते तो वह उन्हें स्पष्ट रूप से समझाती - "पढी-लिखी मैं नहीं हूँ, नासमझ और गँवार हूँ, यह सही है। मैं लेक्चर नहीं दे सकती, पर पंचायत नहीं कर सकती, आदेश नहीं दे सकती, यह भी सही है। लेकिन दो दिन के लिए मैं कहीं चली जाऊँ तब देखिए कि आप यह घर कैसे चलाते है।"[37]

भरत की माँ प्रतिकुल परिस्थिति में दिनरात मेहनत करके, कभी अपने आप भुखा रहकर भरत को पढा रही थी। पिताजी के अन्याय को चुपचाप सहकर वे जिन्दगी के दिन वैसे ही काटती जा रही थी।

यहाँ भरत की माँ पर पिताजी द्वारा होनेवाले शोषण तथा अन्याय को गुप्तजी ने दिशाया है।

गुप्तजी ने अपने उपन्यासों में धनी और अभिजात्य वर्ग को, सामंती और पुरूष-प्रधान संस्कृति को निम्न और दास वर्ग की नारियों के शोषण के लिए दोषी ठहराया है। उनके "आग और आंसू" 1983 में भैरवजी ने बडे सरकार द्वारा हवेली में होनेवाले व्याभिचार की ओर संकेत किया हैं। हवेली में कोई लौंडी ऐसी नहीं बची है जो बडे सरकार की वासना का शिकार नहीं बनी है। मुंदरी, बदमिया, महराजिन, सुगिया आदि अनेक दासियों का चित्रण उपन्यास में आया है। नारी जीवन की विवशता, मर्मांतक पीडा और सामन्तीय बर्बरतापर करारा व्यंग गुप्तजी ने किया है। ये सारी दासियाँ बडे सरकार के शिकंजे से मुक्त होना चाहती है मगर लाख कोशिशों के बावजूद भी सफलता नहीं हो पाती।

मुंदरी की माँ बडे सरकार की पत्नी पानकुँवरी के पिता तालुकेदार साहब को एक चीज वस्तु के समान उपहार में प्राप्त हुई थी। तालुकेदार साहब से ही मुंदरी का जन्म होता है, जिसे बडे सरकार को पानकुँवरी के साथ लग्नोपहार के रूप में प्रदान किया गया है। माँ के कारण बेटी को लौंडी बनना पडा। जमींदार, महाजन, पैसेवाले लोगों के साथ नारी का रिश्ता लेखक ने जोडा है। लौंडियों का अपने जीवन पर अपना कोई अधिकार नहीं रहता है धनीक उसके साथ मनमाना व्यवहार करते है। नारियों को भेट के रूप में प्रदान किया जाता है। यह हमारे देश की सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात है। मुंदरी

की माँ ने सोचा था - "उसके खानदान का लौंडीपन का सिलसिला उससे ही खतम हो जायगा। वह अपनी बेटी की शादी कहीं कर देगी। आज हमेशा - हमेशा के लिए उसने समझ लिया है कि वह लौंडी है, सिर्फ लौंडी और लौंडी की बेटी भी चाहे वह किससे भी पैदा क्यों न हुई हो, लौंडी ही है, सिर्फ लौंडी।"[38] वह मुंदरी को समझाती है - "लौंडी से बेसवा की जिन्दगी अच्छी होती है और बडी-से-बडी बेसवा भी एक अदना ब्याहता औरत को देखकर सरम से गड जाती है। तू किसी के साथ बियाह कर लेना, जो भी दुख पडे झेलना, लेकिन लौंडी की जिन्दगी हरगिज न जीना।"[39] मुंदरी इस उपन्यास का सशक्त और प्रगतिशील नारी पात्र है वह अपनी माँ की बात को नहीं भूलती। वह बैंगा का भाई पेंगा के साथ भाग निकलने का प्रगतिशील कदम उठाती है लेकिन उसे सफलता नहीं मिलती। मुंदरी के भीतर सामन्ती व्यवस्था के प्रति नफरत पैदा हो जाती है। सारी गोपनीयता का पर्दाफाश करती हुअी मुंदरी कहती है - "मैं का किसीसे डरती हूँ। मैं चिल्ला चिल्लाकर कहूँगी, हाँ-हाँ, मैंने ही किया। बोलो, मेरा का कर लोगे? मैं एक-एक की बखिया उधेडकर रख दूँगी। इन बडे सरकार को कटहरे में खडा करो। फिर सुनो।....महराजिन। जुलेसरी। जनकिया। सुगिया। पटेसरी। बदमिया। और औ। तुम सब भी आओ जो, जो भांग गयी या मर-बिला गयी। बोलो, तुम सब बोलो। नोच डालो इस पापी के सिर के एक-एक बाल को। नोच डालो।"[40] मुंदरी के लाख चाहने पर भी वह अपने सतित्व की रक्षा नहीं कर पाती और बडे सरकार से उसे भेंट में सुनरी मिलती है। बडे सरकार के पुत्र लल्लन के साथ सुनरी विश्वास के साथ अपना दिल दे बैठती है मगर उसे क्या मालूम - "इ लोगन के बदले पेड-रूख से दिल लगाया जाये तो ज्यादा अच्छा।"

बडे सरकार मुंदरी के दिल ढलने पर बदमिया को अपने केलि-क्रीडा की सामग्री बनाते है। बदमियाँ को विधवा माँ के मर जाने पर बडे सरकार सहारा देते है फिर सोते में ही बडे सरकार उसे अपने बगल में खीच लेते हैं। धीरे-धीरे उसका विरोध मर जाता है। आत्मा मर जाती है। वह एक मशीन बन जाती है। बदमिया के शब्दों में ही - "हवेली में जितनी औरतें थी, सब-की-सब अपने दिनों में उसी तरह बडे सरकार की सेवा में रह चुकी थी। कोई उसपर हँसनेवाला हवेली में न था, चलनी चलनी पर कैसे हसें।"[41] महाराजिन मुंदरी से अपने लौंडिपन के बारे में कहती है - "एक रात बडे सरकार मुझे दिवानखाने में लाये और जबरन मुझे नष्ट किया। इसके बाद मुझे दारू और दवाँइयाँ खिला-पिलाकर मेा गरभ गिरा दिया गया। फिरतो सदा के लिए वह मेरा दुल्हा बन गया।"[42]

बडे सरकार नारियों को अपनी वासना का शिकार बनाते है। उन्होंने कई नारियों की जिन्दगी बरबाद की है। महराजिन गरीबी के कारण, मुंदरी भेट में आने के कारण तो मुंदरी के दिन ढलने पर बदमिया जैसी अनेक नारियाँ बडे सरकार के केलि-क्रीडा का साधन बनी है और खुद बडे

सरकार भी इस बारे में अपना मत प्रस्तुत करते हुअे दारोगा से कहते है - "एक-दो हों, तो नाम याद रखें। यहाँ तो मौसम बदला और नया फल।"[43]

इस उपन्यास में लेखक ने स्पष्ट किया है कि नारी की स्थिति बहुत दयनीय है इसमें बडे सरकार की पानकुँवरी भी अपवाद नहीं है। वह भाँति-भाँति के मानसिक, शारीरिक रोगों से पीडित रहती थी। पानकुँवरी शादी के पूर्व रंजन नामक एक युवक से प्रेम करती थी, वह पति के अनुपस्थिति में रंजन को भोगती है मगर जब बडे सरकार को इस बात का पता चलता है तो वह उसे गोली से मार देते हैं। बडे सरकार को यह भी पता चलता है कि अबतक जिसे वह अपना बेटा लल्लन समझते थे वह पानकुँवरी और रंजन का पुत्र है इस बात से चीढकर वे वह उन्हें मारना चाहते है परंतु अध्यात्मिक क्षणों में उधर और सहिष्णु बन जाते है। लल्लन भी शकुंतला नामक एक विदुषी के संपर्क में आने से मानवतावादी बन जाता है।

लेखक ने यहाँ सामंती दासता में पली लौंडी जीवन की विवशता, आर्थिक विपन्नता, मजबूरी, परवशता आदि का चित्रण करके सामंती शिकंजे में अटकी मुंदरी जैसी नारी में प्रगतिवादी चेतना भरकर इस स्थिति के खिलाफ विद्रोह करने को उकसाया है, अभिजात्य वर्ग की भोग वासना ने तत्कालीन लौंडी जीवन के साथ कैसी खिलवाड किया था, इसका अत्यंत सूक्ष्मता के साथ गुप्तजी ने चित्रण किया है। नारी शोषण के इस पुराने और परंपरागत आयाम में मुंदरी के रूप में प्राण भरकर, इस प्रकार के नारी-शोषण के खिलाफ कदम उठाने का और संपूर्ण सामंती व्यवस्था को नकारने का प्रयत्न किया है।

निष्कर्ष :-

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने आलोच्य उपन्यासों में नारी शोषण के विविधमुखी आयामों पर गहराई से सोचा है। उन्होंने "मशाल" की "सकीना", "सत्ती मैया का चौरा" की कैलासिया को बलात्कारित नारियों के रूप में प्रस्तुत करके सामंती समाज में पले बडे पुंजीपति, निम्नवर्ग की अभावग्रस्त नारियों का शोषण कैसे करते थे इस पर प्रकाश डाला है। ये दो नारियाँ बलात्कारित जरूर है परंतु इनके बलात्कारों के प्रकार में भी अंतर दिखायी देता है। सकीना पर अंग्रेज पुलिस अफसर बलात्कार करते है तो कैलासिया पर अंग्रेजों की छाँव में पले सामंत बलात्कार करते है। अर्थात चाहे परकीय सत्ता हो चाहे स्वकीय हो बलात्कार के रूप में सदियों से नारी शोषण होता आ रहा है और आज भी हो रहा है। यह दिखाना यहाँ लेखक का उद्देश्य लगता है।

"गंगामैया" की विधवा भाभी का शोषण एक शोषण का अगला प्रकार है। भारतीय विधवा नारी की दयनीयता, उसका परंपरा, कर्मठ समाज द्वारा होनेवाला शोषण दिखाकर इस शोषण का

अंत विधवा विवाह में तलाशने का प्रयत्न भैरवजी ने किया है।

"नौजवान" में पुरूष-प्रधान संस्कृति के कारण घर में होनेवाला नारी शोषण दिखाकर लेखक ने गृहस्थी में नारी का महत्वपूर्ण स्थान विषद करने का प्रयत्न किया है। पुरूष-प्रधान संस्कृति में बदलाव और नारी अस्मिता जागृत हुअे बगैर यह शोषण थमने की संभावना बिल्कुल नहीं है। इसी तरफ भी संकेत किया हुआ लक्षित होता है।

"आग और आंसू" का शोषण सामंती युगीन लौंडी प्रथा से संपृक्त दिखाकर इन नारियों की मजबूरी, आर्थिक विपन्नता, विवशता, पराश्रयीता आदि की तरफ लेखक ने संकेत करके मुंदरी जैसी नारियों द्वारा इस व्यवस्था की जंजीरों को तोडने का प्रयत्न कराया है। अर्थात इसमें मुंदरी को सफलता मिली या असफलता यह प्रश्न गौण है। सदियों से चली आयी परंपरा को तोडने का उसका प्रयत्न प्रशंसनीय और प्रगतिवादी चेतना का एक सशक्त आयाम साबित होता है।

लेखक ने आलोच्य उपन्यासों में नारी जागृति का काम किया है। उनकी नारी प्रताडित होकर भी धीरे-धीरे चेतित होती हुअी देखने को मिलती है।

बेकारी की समस्या :-

बेकारी की समस्या आज दिन-ब-दिन बढती जा रही है। इस बेकारी के पिछे वस्तुतः हमारी वर्तमान शिक्षा पध्दति महत्वपूर्ण है। आज लाखो पढे-लिखे नौजवान रोजगार के लिए मारे-मारे घुम रहे हैं। उनके सामने किसी एक निश्चित भविष्य न होने तथा अजीविका के साधन उपलब्ध न होने के कारण उनमें सरकार तथा प्रशासन के प्रति निरन्तर विद्रोह बढता जा रहा है। इसी निराशा तथा विद्रोह की भावना के कारण उनमें अव्यवस्था और अनुशासन हीनता भी बढती जा रही है। बेकारी से उद्‌भूत अनुशासनहीनता को मिटाने में शासन तथा सरकार असफल सिध्द हुई है। छात्रों का यह विद्रोह भारतवर्ष में हर स्थान पर निरन्तर बडता जा रहा है और राष्ट्र में बडे-बडे देशव्यापी उपद्रव हो रहे हैं - जिनसे कि सम्पूर्ण जीवन अस्तव्यस्त होता जा रहा है।

आज हमारे गाँव बेरोजगारी की स्थिति में निरन्तर टूटते दृष्टिगत होते है। देश की शिक्षा प्रणाली उच्च-से-उच्च डिग्री तो प्रदान कर देती है लेकिन व्यवहारिक जगत् में डिग्री मूल्यहीन है। गाँव का शिक्षित वर्ग जीवनगत भौतिक अभावों के कारण नगरोन्मुख है। उनका शिक्षित होना उन्हें ग्रामीण परिवेश में घुलने-मिलने नहीं देता और वह गाँव में लौटकर भी शहर की रंगीनियों को तरसता है। भैरवप्रसाद गुप्तजी के "सती मैया का चौरा" 1959 में पिअरी गाँव में शिक्षित वर्ग बेकारी की अवस्था में फँसने के कारण आक्रोश करता है। "गाँव का कैलास बी.एस-सी. इंजिनिअरीग

पास करके बेकार पडा हुआ है, समरनाथ एम.एस्सी. अधूरा छोडकर कई साल इधर-उधर चक्कर लगाकर गाँव में आया है और अब स्कूल में काम पाने की कोशिश में है.... जयराम भी इण्टर करके कस्बे के स्कूल का चक्कर लगा रहा है।"[44] गाँव का मन्ने भी साल में तीन-चार महीने के लिए शहर में "केन इन्सपेक्टर" लग जाता था। लेकिन समय के परिवर्तन ने उसकी वह नौकरी भी ले ली। सभी शिक्षित शहरों की ओर उन्मुख हैं।

अभाव उनमें अक्रोश एवं असंतोष उत्पन्न करते हैं लेकिन वह अक्रोश उन्हें अन्दर-ही-अन्दर तोडता है। कुंठाएँ उत्पन्न करता है। पिअरी गाँव में जितने भी शिक्षित है सभी कहीं-न-कहीं शहर में आजीविका के लिए प्रयत्नशील हैं। मन्ने, मुन्नी, कैलास, समरनाथ, जयराम आदि काफी प्रयत्न करते है और अपनी असफलता के कारण गाँव में ही रह जाते है।

गुप्तजी के "नौजवान" 1972 में भी बेकारी व्याप्त है। गुप्तजी ने जनतांत्रिक समाजवाद पर व्यंग्य करते हुअे लिखा है - "पूंजीपतियों के लिए ही जनतांत्रिक समाजवाद भी एक ढकोसला है। समाजवाद के नाम पर वे अपनी योजनाओं की बातें उठाते हैं। उसका परिणाम क्या हुआ? क्या यह सरकार जनता की है? जनता द्वारा और जनता के लिए जलाया जाती हैं? यदि इन योजनाओं का अंश समाजवादी होता तो क्या आज सत्तर हजार इंजिनिअर क्यों बेकार कर दिये है? आज जो बाजार में इंजिनिअरों की किमत घटा दी गयी है, उससे किसका हित साधन होता है?"[45]

शिक्षा व्यवस्था का स्तर गिर जाने से और पूंजीपतियों के अनधिकृत अधिकारों से आज बेकारी दिन-ब-दिन बढती जा रही है इसे इंजिनिअर भी अपवाद नहीं है।

निष्कर्ष :-

पूरे भारत भर बेकारी की समस्या व्याप्त होकर भी इस समस्या पर हिन्दी भाषा के लेखकों ने कम मात्रा में सोचा है। भैरवप्रसाद गुप्तजी ने भी अपने आलोच्य उपन्यासों में केवल अनुशंगीक रूप में एक-दो जगह पर इस समस्या पर चिंतन किया है। सन 1970 के पश्चात हिन्दी उपन्यासों में बेकारी की समस्या का स्वरूप क्षीण होता हुआ लक्षित होता है। सन 1960 के बाद सरकार की शिक्षा विषयक उदारता के कारण अनेक शिक्षा संस्थाओं का निर्माण हुआ। शिक्षितों के संख्या में वृध्दि हुअी। देहातों में कुटी-कुटीयों तक शिक्षा-दीक्षा का प्रचार और प्रसार हुआ परिणामस्वरूप शिक्षित बेकारों की संख्या वृध्दिंगत हुअी। आज सरकार इस बेकारी को निपटने के लिए विविध स्तर पर प्रयत्न कर रही है। स्वयं रोजगार के लिए राशी उपलब्ध करा देना, कृषी व्यवसाय की तरफ युवकों को मुडाने के लिए कृषी का औद्योगिकरण करना, समाज कल्याण कार्यालयों को क्रियाशील बनाकर दुर्बलों को नौकरीया

उपलब्ध करा देने का प्रयत्न करना आदि विविध माध्यमों से सरकार बेकारी को निपटाने का प्रयत्न कर रही है। फलस्वरूप लगता है कि आज के उपन्यास लेखक इस समस्या की तरफ ध्यान नही दे रही है इसी कारण भैरवप्रसाद गुप्तजी जनवादी एवं प्रगतिवादी लेखक होने के पश्चात भी उन्होंने इस समस्या की तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया है।

भ्रष्टाचार :-

किसी भी राष्ट्र को संगठित करने के लिए उसकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना बहुत जरूरी होता है। स्वाधिनता प्राप्ति के बाद देश के नेताओं का ध्यान सबसे पहले देश के योजनाबध्द विकास की ओर गया। इसके लिए पंचवार्षिक योजनाओं का निर्माण हुआ और एक के बाद एक करके सफलतापूर्वक पंचवार्षीय योजनाएँ क्रियान्वित हो चुकी। विदेशो की सहायता से बडे-बडे कल कारखानों का निर्माण हुआ। विकास की योजनाओं के रहते भी भारत की सामान्य जनता अर्थाभाव से पीडित रही। दरिद्रता, बीमारी, अज्ञान, गन्दगी, बेकारी जैसे आर्थिक दुष्परिणामें के चंगुल में आज भारत फंसा हुआ है और शायद सबसे बडा यही कारण है कि आज भारत की समूची उन्नति केवल प्रशासनीक अकडों के माहौल में गुम होकर रह गयी है।

स्वाधीन भारत का यह भी एक बडा दुर्भाग्य रहा है कि जनता के अधिकारों के संरक्षक जनप्रतिनिधि स्वयं भी भ्रष्टाचार तथा कालाबाजारी को अपनी स्वार्थ सिध्दि के लिए प्रोत्साहित करने में लगे हुअे हैं। इसका अप्रत्यक्ष रूप से संकेत देते हुअे गुप्तजी "सत्ती मैया का चौरा" में लिखते हैं - "किसी भी किसान या मजूर को ले लो, उसके घर को देखो, उसके तन के कपडे को देखो, उससे पूछकर समझो कि उसमें क्या परिवर्तन आया है? जमीदार न रहे तो स्थानीय कांग्रेसी नेताओं ने उनकी जगह ले ली है, और किसानों पर वे उन्हीं की तरह की हुकूमत करते हैं।"[46]

आज सरकार की योजनाओं के अंतर्गत किसानों को बीज, खाद, कृषि के नये उपकरण को दिया जाता है मगर आज भ्रष्टाचार का फैलाव इतना तेज हो गया है कि जो चीजें लोगों के लिए उपलब्ध करायी जाती है, उसका सही इस्तेमाल किया ही नहीं जाता इस बात पर प्रकाश डालते हुअे मन्ने स्पष्ट करता है - "इतने दिन से पंचायत कायम हुअी है, उसने गाँव के लिए क्या किया? कुएँ बनवाने के लिए कितना रूपया मिला इस गाँव को लेकिन क्या एक भी कुआँ बना? बीज मिलता है, लेकिन वह खेत में न जाकर स्वार्थियों के पेट में चला जाता है। सभापति के घर पर रेडिओ बजता है, रोज पंचायत का कार्यक्रम चलता है, लेकिन कोई उसे सुनने-सुनानेवाला नहीं। गली के नुक्कडों पर कंदीले गाड दी गयी हैं, लेकिन उनमें से किसी में आज तक रोषनी नहीं हुई।.... अखबार और न जाने

कितना साहित्य आता है, लेकिन उसे पढनेवाला कोई नही। पंचायत सेक्रेटरी उसे बटोरकर बनीये के यहाँ बेच आता है।'[47]

गाँव के महाजन, जमीदार छोटी जातियों के नारियों पर अत्याचार करते है। उनकी अस्मत को लुटने का काम करते है और कुछ गडबड हो गयी तो पुलिस को पैसा देकर मामले को निपटाने का काम किया जाता है। पिअरी गाँव में दिन-दहाडे तेलीआने से गुजरनेवाली चमर की बेटी कैलसिया को नंदराम का लडका किशन जबरदस्ती उठा लेता हे और उस पर बलात्कार करता है। तो उपन्यास का नायक मन्ने बसमतिया के साथ अवैध संबंध रखता है और जब बडती हुअी दिखायी देने लगती है तब मन्ने थाने पहुँच जाता है, नायब से मिलता है। नायब मुसलमान था। गाँव घरी की सब बातें समझाते हुअे मन्ने उसके हाथों में पाँच रूपया थमा देता हैं और मामला यही खत्म कर दिया जाता है।

यहाँ मन्ने ने यह स्पष्ट कर दिया है कि गाँव में दुर्बलों के विकास के नामपर सरकार की तरफ से दी जानेवाली सामग्री, गाँव के मुखिया लोगों की जेब में जाती है। इससे दुर्बलों का विकास तो दूर ही रहता है और केवल भ्रष्टाचार ही बढता रहता है। भारत के ग्रामवासी नेताओं की इसी नीति के कारण भारतीय ग्राम अब विकास से कोसों दूर रहे हुअे लक्षित होते हैं। इसी तथ्य पर भैरवजी ने यहाँ प्रगतिवादी दृष्टिकोण से सोचा है।

राजनीतिक समस्या :-

गुप्तजी ने अपने हर उपन्यास में कई महत्वपूर्ण समस्याओं को उठाया है। 'राजनीति' वर्तमान समाज में सामान्य चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय बन गई है। विश्वराजनीति में सत्ता प्राप्ति के लिए घोर संघर्ष चल रहे हैं। सैनिक क्रांतियाँ हो रही हैं और शासन तन्त्रों को प्रतिदिन उल्टा-पुल्टा किया जा रहा है। विश्व की ऐसी अनेक घटनाओं ने स्वाधीन भारत की राजनीतिक चेतना को भी काफी प्रभावित किया है। सत्ता के विकेंद्रीकरण से, भारत में राजनीति को विशेष गति मिली है। चुनाओं ने राजनीति को गांव-गांव और घर-घर पहुंचा दिया है। भारत चूंकि अविकसित विकासशील देश है राजनीतिक क्षेत्र में यहां पूंजीवाद और समाजवाद का संघर्ष काफी बडे पैमाने पर चल रहा है।

गुप्तजी ने 'गंगामैया' में प्रमुख दो समस्याओं को उठाया है जिसमें राजनीतिक समस्या महत्वपूर्ण है। उपन्यास में बलिया के किसी गांव में गंगा द्वारा छोडी गयी 'दीयर' पर जमीदारों का नियम के विरूध्द अधिपत्य चाहना राजनीतिक समस्या है। इस समस्या को सुलझाने के लिए गुप्तजी ने 'मटरू' जैसे साहसी और सशक्त व्यक्तित्व की सृष्टि की है। साहस और शक्ति का परिचय देने के लिए ही लेखक ने उपन्यास में मटरू को निर्माण किया है मटरू गोपी से कहता है - 'बस हिम्मत

चाहिए, हिम्मत। हिम्मत के आगे दुनिया झुक जाती है।'[48]

युगों-युगों से भारतीय जमींदार जमीनों के मालिक बनकर श्रमजीवी कृषकों का शोषण करते आये हैं। कानून और कायदे के मुताबिक 'दीयर' दैवी देन है मगर अनभिज्ञ किसान यह भी नहीं जानता की ऐसी जमीन पर जमींदार को कर अथवा लगान लेने का कोई अधिकार नहीं है।

'बलिया के इस गांव में घाघरा नदी प्रतिवर्ष ऐसे दीयर छोडती थी जिस पर बिना परिश्रम किए ही झांऊ और सरकंडे के घने जंगल उगा आया करते थे। वहां के जमींदार इस घास को बिकवाकर अर्थ-लाभ करना अपना अधिकार समझते थे। यही सीलसिला वर्षों तक चल रहा था। 'मटरू' एक बुध्दिमान, जागरूक और साहसी व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। वह 'दीयर' की भूमि पर परिश्रम करता है और उसके परिश्रम का उसे फल मिलता है। छाती-छाती भर रबी की फसल होती है। मटरू के खेतों को देखकर तीरवादी के किसानों को भी लालच लगता है और वे भी दीयर में खेती करना आरंभ करते हैं लेकिन अपनी अज्ञान के कारण, उस दीयर पर खेती करने के लिए जमींदार की अज्ञा के लिए जाते है। लालची जमींदार उनसे तीन साल का लगान पेशगी के रूप में लेते हैं। मगर मटरू किसानों को स्पष्ट रूप से बता देता है कि दीयर पर खेती करने के लिए न तो जमींदार से आज्ञा लेने की आवश्यकता है और न ही लगान देने की। मटरू के समझाने के बाद बहुत सारे किसान झाऊ और सरकंडों को हटाकर खेती करने लगते हैं। जमींदारों को सबसे बडी चिन्ता तब हुई जब किसानों ने उनकी आज्ञा लेना बंद किया और यही कारण है कि जमींदार इसको दबाना चाहते हैं, जमींदार का करिन्दा मटरू को समझाने के लिए जाता है और जब मटरू और किसान नहीं मानते तो उन्हें कानून और जमीन से बेदखल करने की धमकी दी जाती है। मटरू ने भी अपनी और अपने साथियों के ताकद को पहचाना है और करिन्दे से वह निर्भिकता से कहता है - 'कहाँ रखा था कायदा और कानुन अब तक। मैंने मेहनत की, फसल उगाई, तो देखकर दांत गड गए। चले हैं, अब जमींदारी का हक जताने। आये न जरा कंधे पर हल लेकर, दिल्लगी है यहाँ खेती करना। भोले किसानों को बेवकूफ बनाकर रूपये ऐंठ लिए। बेचारे वे मेहनत करेंगे और मसनद पर बैठे, गुलछर्रे उडायेंगे तुम्हारे जमींदार।'[49] मटरू अपने साथियों के अधिकारों की रक्षा करते हुअे चुनौति के स्वर में करिंदे से कहता है - 'देखेंगे कि अब किस तरह जमींदार किसी किसान से सलामी और लगान लेते है।'[50]

'मटरू' को सोते हुअे डाके के जुर्म में गिरफतार किया गया। झूठे मुकदमे, रपट दायर किये गये और मटरू को तीन वर्ष के लिए सजा दे दी गयी। जमींदारों ने सोचा था कि फसल तैयार होते समय किसानों को फिर परेशान किया जाय लेकिन अब किसान मटरू द्वारा चेतित किये गये थे स्वतंत्रता

और काम के महत्व को समझ चुके थे। अब उन्होंने भली प्रकार समझ लिया था एकमत रहेंगे और जमींदार का मुँह ताककर खुद ही इस धरती पर अपना अधिकार । जमींदार हमारा कुछ नहीं बिगाड सकते।"[51]

शक्ति के इसी विश्वास पर ये अपनी फसल को जमींदार के हाथों से बचा लेते हैं। तीन वर्षों की अवधी समाप्त करके मटरू फिर वापस गांव लौट आता है। इसी दौरान गंगा की दो धाराएं बन जाने से बीच की बहुत सी तरी की जमीन छुट जाती है। इस पर मटरू और उसके साथी अपने परिश्रम से धान की उपज करते हैं। जमींदार पुलिस और न्यायालय की मदद से किसानों की उभरती हुई शक्ति को मटियामेट कर देना चाहते हैं। मटरू अपने साथियों में चेतना भरता है और अपने साथियों को सशक्त कर देना चाहता है - "यह याद रखो कि एक बार अगर जमींदारों को तुमने चस्का लगा दिया तो तुम्हीं नहीं तुम्हारे बाल बच्चें भी हमेशा के लिए उनके शिकंजे में फंस जायेंगे। उनकी लोभ की जीभ सुरसा की तरह बढती जाएगी और एक दिन सबको निगल जाएगी।"[52]

जब कोई दूसरा बस न चला तो जमींदारों ने फौजदारी का मुकदमा दायर कर दिया। मटरू को अपने बंदी होने की चिन्ता नहीं थी उसे तो केवल यही फिकर थी कि अपनी अनुपस्थिति में किसानों का संगठन कहीं शीथिल न पड जाये। लेकिन मटरू का साला "पूजन" मटरू को आश्वासन देता है - "तुम्हारे साथी अपने खून की आखिरी बूंद तक इसकी रक्षा करेंगे। जिस तरह गुजरा जमाना वापिस नहीं आता जमींदारों के उखडे पैर यहाँ फिर कभी न जम पायेंगे।... हमारा जोर दिन-दिन बढता जा रहा है। हमारे साथी बढते जा रहे हैं। जमाना आगे बढ रहा है। यहाँ का हर किसान आज मटरू बनने की तमन्ना रखता है।"[53]

पूजन के यह शब्द गाँव में उत्पन्न राजनीतिक चेतना के परिचायक हैं।

साम्प्रदायिकता की समस्या :-

स्वतंत्र भारत के बटवारे ने साम्प्रदायिकता को बढावा दिया। इस साम्प्रदायिकता के आग में झूलसकर हिन्दुस्तान तीन भागों में खंडित हुआ। आज भी देश साम्प्रदायिकता के दानवी पंजो से मुक्त नहीं हुआ है। सन 1979 में अलीगढ, जमशेटपूर और इलाहाबाद में साम्प्रदायिक दंगे हुअे। सन 1992 में राममंदीर, बाबरी मस्जिद को लेकर भयंकर साम्प्रदायिक फसाद हुआ इसकी दग्धता पूरे भारत भर फैल गयी। भारत तीन टुकडों में विभाजित होकर भी भितर से अब भी साम्प्रदायिकता की भयावह दावाग्नी झुलस रही है। पंजाब, कश्मिर इसके अच्छे उदाहरण है। हिन्दु-सिख साम्प्रदायिक संघर्ष के कारण पंजाबी स्वतंत्र खलीस्तान की माँग कर रहे है इस माँग को दबानेवाले भारत के प्रधानमंत्री. इंदिरा गांधी की निघृण हत्या इसीका परिणाम है। आज के जनप्रतिनिधि अपने आसन को स्थिर रखने के लिए

साम्प्रदायिकता को बढाना चाहते है फलस्वरूप आज भी यह समस्या चिंतनीय बन बैठी है। हिन्दी के उपन्यास लेखकों ने इस समस्या को विस्तार के साथ चित्रांकित किया है।

साम्प्रदायिक विवाद में मानवी मूल्यों की उपेक्षा की जाती है। धर्मांतरण, नरसंहार, अग्नीकांड, लूट-पाट, बलात्कार आदि जघन्य कृत्य साम्प्रदायिक फसाद में किये जाते है। इस साम्प्रदायिकता का जहरिला विष भारत में बोने का काम अंग्रेजो ने किया। स्वतंत्रता के पश्चात स्वार्थांध राजनीति से इस समस्या को और भी बढावा दिया। परिणामस्वरूप यह समस्या आज भी चिंतनीय रूप धारण कर रही है। आज इस अमानवीय साम्प्रदायिकता के दानवी पंजों में अमानवीय हत्यायें होने लगी है। इस समस्या को भैरवप्रसाद गुप्त ने उपन्यास "सत्ती मैया का चौरा" में अच्छी तरह प्रस्तुत किया है।

"सत्ती मैया का चौरा" इस उपन्यास की मुख्य समस्या साम्प्रदायिक है। इस समस्या का रूप प्रारंभ में धार्मिक रहा है परंतु अंग्रेजों के आने के बाद इस समस्याने राजनीतिक रूप धारण कर लिया।

पिअरी गाँव का विस्तृत इतिहास देकर लेखक ने यह बताने किया है कि प्रजा पर मुसलमान शासकों से अधिक अत्याचार हिन्दू शासक करते थे और मुसलमान उनका विरोध करते थे। सुगंधराय और काजी की अत्याचारपूर्ण अंमलदारी से प्रजा को मुक्ति दिलाने के लिए गुलाम हैदर तथा उनके सत्ताईस साथियों ने प्राण गवाँये। गुलाम हैदर की मृत्यु ने इलाके में चेतना जागृति की और कानूनी लडाई लडकर पिअरी गाँव आजाद हुआ। इस स्वतंत्र ग्राम में आज के जैसे साम्प्रदायिक विष नहीं फैला था। "....तब इस गाँव के पुरखे बाहदूर थे, आजादी पसंद करते थे... जो मेल, मोह और एकी की कीमत जाने थे, जो न हिन्दु थे न मुसलमान सीर्फ इन्सान थे जो हिंदु होकर मुसलमानों के मजार बनवाते थे और मुसलकान होकर हिन्दुओं की मठिया बनवाते थे।"[54] उन्हें बताया गया कि - "मुसलमानों की कौम हुक्मदां कौम है, गाँव पर उनकी अमलदारी है, हिन्दु उनकी रिआया है और उनके साथ उन्हें रिआया का ही बर्ताव करना चाहिए।"[55]

भेदभाव के ये बीज धीरे-धीरे पनपते गये और जब देश की आजादी का प्रश्न उठा, नेतागिरी और सभापति के चुनाव की होड होने लगी - इस हालत में इस साम्प्रदायिकता के अंकुर ने पनपकर राजनीतिक रूप धारण कर लिया और तबसे आज तक बराबर धर्म की आड में साम्प्रदायिकता के इस जहर ने व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र की शांति भंग करके सदाही समस्याओं के विस्तार में सहाय्यता दी।

यह वैमनस्य देश की उन्नति में बाधा बना। साम्प्रदायिकता के कारण पाकिस्तान बना, हिन्दु-मुस्लिम एकता के मसिहा महात्मा गांधीजी की हत्या हुअी।

भैरवप्रसाद गुप्तजी के मतानुसार - "हिन्दुओं के आपसी मतभेद के कारण ही तो एक समय देश में मुसलमानों का राज्य स्थापित हुआ।"[56] भारतवासियों की इसी दुर्बलता का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने "डिवाइड ॲण्ड रूल" की नीति अपनाकर देश को दरिद्री बनाया। आज हम भी देखते है कि मंदिर के नाम पर, मंदिर की मुर्ति के नाम पर, हिन्दु-मुस्लिम अंतरजातीय विवाह के कारण छोटी-छोटी साधारणसी बातों को धर्म के नाम पर इतना तुल दिया जाता है कि वह धार्मिक न रहकर राजनीतिक समस्या बन जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में पिअरी गाँव के एक प्राईमरी स्कूल के प्रश्न को लेकर अध्यापक, ग्राम सभापति एक साम्प्रदायिक भावनाओं के वशीभूत होकर लडते-झगडते हैं। इस झगडे का आधार था धार्मिक परंतु बना गया था राजनीतिक।

लेखक ने मन्ने और मुन्नी को जो क्रमशः मुसलमान और हिन्दु है, अभिन्न मित्रों के रूप में चित्रित किया है और उनके संयुक्त परिश्रम से गांव की नई चेतना की ओर अग्रसर होते हुअे हिन्दु-मुसलमान एकता का संदेश दिया है।

धार्मिक क्षेत्र में साम्प्रदायिकता के व्यवहार से समाज का अहित नहीं होता।

मन्ने और मुन्नी एक ही दौने में सेव मिठाई खाते तथा पानी पीते।[57] मुन्नी पिताजी से डांट खाता है परंतु समाज पर इसका कोई प्रभाव नही पडता। दूसरे गाँव की प्रगति में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती परंतु मन्ने का प्रथम श्रेणी में आना कैलाश के पिताजी को अच्छा न लगने के कारण वे "स्कूल के पंडित पर अनुचित दबाव डालकर कैलाश को प्रथम और मन्ने को तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण घोषित करने पर विवश करते हैं।"[58] यही भावना नैतिकता का तो पतन तो करती है बल्कि गांव के वातावरण को भी दूषित करती है। केवल ग्राम ही नहीं इसी संकिर्णता से बडे-बडे नगर भी दुषित बन जाते हैं मिल के केन इन्स्पेक्टरी की जगह भी उसे मुसलमान होने के कारण नहीं मिलती क्योंकि मिल-मालिक हिन्दू था।

मन्ने व्यक्तिगत रूप से इस संकिर्णता से परे है। उसके पूर्वजों में जो कभी इस प्रकार का वैमनस्य और संघर्ष था, उसे वह भूल जाना चाहता था। वह कहता है - "वह जमाना और था, वे लोग और थे, हम उनकी राह पर नहीं चल सकते।"[59]

हिन्दुओं के गांव में रहकर भी वह गांव की उन्नति के अनेक प्रयत्न करता है, अपने मुसलमान को गांव के उन्नति के लिए बाधक नहीं समझता किन्तु हिन्दुओं की ओर से केवल बाधाएँ ही नहीं, झगडे उपस्थित किए जाते हैं। पिअरी गाँव में स्कूल और सत्ती मैया का चौरा को लेकर बखेडा खडा होता हैं, मुकदमेबाजी शुरू होती हैं और सती मैया के चौरे के निकट की चार दीवारी रहमान की

होने के कारण कांग्रेसी नेता अवधेश गांव में हिन्दू-मुसलमान के नाम पर फूट डालकर आगामी चुनाव के लिए अपना क्षेत्र तैयार कर लेता है। यद्यपि गांव के संयुक्त परिश्रम से चलाये हुअे स्कूल का उद्देश्य यज्ञ के समान पवित्र था। गांव की सारी जनता उसकी पवित्रता में विश्वास करती थी। हीरा भगत कहता है - "अब मन्ने बाबु और मुन्नी के जग रोपा है पुरे गांव का यह फरज है कि सब लोग मिल के इस जग को पूरा करे। कोई भी इससे अंग न चुराये। जिससे जो बन पडे, उठा न रखे।"[60]

छः सौ विद्यार्थियों का यह स्कूल चुनाव में मतदान के लिए अच्छा आधार हो सकता था। अवधेश के चुनाव लडने का यही क्षेत्र था। अवधेश कांग्रेसी नेता था। अवधेश गांववालों को भडकाता है - "इतने हिन्दुओं के रहते भी स्कूल का सेक्रेटरी एक मुसलमान हो, यह लज्जा की बात है।"[61] जिला कांग्रेस सभापति से कहता है - "अगर यह स्कूल चलता रहेगा तो पूरा जवार कम्युनिस्ट हो जायगा।"[62]

इस पर भी कोई प्रभाव नहीं हुआ तो - "जाली रसिदें और जाली मोहर बनाकर मन्ने पर स्कूल के रूपयों के गबन का अपराध लगाकर इन्स्पेक्टर को स्कूल कारिणी के नये चुनाव पर विवश करता है।"[63] स्कूल और घरों की दीवारें मन्ने के विरूध्द अश्लिल शब्दों में रंग दी गई।

परंतु इसी समय तक जनता में इतनी बुध्दि और चेतना आ गयी थी कि वे लोगों के बहकावे में न जाकर अपना भला-बूरा समझने लगी थी। इसी कारण अवधेश के षडयंत्र का जनता पर कोई असर नहीं पडा। मन्ने का मुसलमान न होना जनता की दृष्टि में अयोग्य नहीं था। दूसरे चुनाव में सर्वसम्मति से मन्ने का चुना जाना गांववालों की विवेक बुध्दि का प्रमाण है। स्कूल के मंत्रीपद के चुनाव की हार से अवधेश बोखला जाता है। रहमान नामक किसान के घर के निकट सती मैया का चौरा था। इस चौरे पर साल में एकाध बार ही शादी-ब्याह के अवसर पर ही गांववाले चोरे की ओर जाते थे। इसी कारण रहमान ने थोडासा रास्ता छोडकर अपने घर की चहार दीवारी बना ली थी। इसी के कारण अवधेश गांववालों को भडकाता है - "ये तो इनका काम ही हम लोगों के देवी-देवताओं के स्थान तोडना है।"[64] रातभर में रहमान की दीवार तोडकर सती मैया का चबुतरा इतना बडा बनवा दिया कि रास्ता बनाने के लिए रहमान के घर की जमीन लिए बिना काम न चले।

चौरे के मामले ग्रामपंचायत का फैसला अंतिम माना गया। पंचायत के फैसले के अनुसार एक हाथ जमीन रहमान के सहन से और चार हाथ चबुतरा तोडकर रास्ता बना लिया गया। ग्रामपंचायत के इस फैसले सेक्रेटरी और पंचायत अफसर भी बदल न सके।

ग्रामपंचायत की इस सफलता द्वारा लेखक ने पंचायत की शक्ति नहीं बल्कि अपनी चुनी हुअी पंचायत में ग्रामीणों के अदम्य विश्वास का परिचय दिया है। लेखक का कहना है कि - "आज

के ग्राम भी गुप्तकालीन ग्रामों के समान शासन की महत्वपूर्ण इकाई बन सकते हैं। ग्रामपंचायत के फैसले में आज भी ग्रामीण पंच परमेश्वर का निवास मानकर विश्वास करते हैं, तथा गांव के सभी झगडे निपटने के लिए ग्रामपंचायत ही सबसे सरल साधन है।

साम्प्रदायिकता की बर्बरता और पाशविकता में एक-एक मन्ने का ही जीवन विशृंखल नहीं हुआ अपितु सैकडों ऐसे मन्ने होंगे जो न हिंदु है, न मुसलमान, है केवल मानव। मन्ने का सिर फुडवाकर लेखक ने साम्प्रदायिकता की भीषण अग्नि की विदग्धता स्पष्ट की है। परंतु विचरणीय यह है कि इस आग को प्रज्वलित करने में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं का हाथ अधिक है।

गुप्तजी ने स्पष्ट किया है यह लडाई मूलतः ग्रामीण हिन्दु और मुसलमानों की आपसी लडाई नहीं है वरन् दलगत राजनीतिक संगठनों की चुनाव की राजनीति तथा वर्गसचेतन किसानों के संगठन को तोडने का कुप्रयास है। गाँव में आर.एस.एस. आदि साम्प्रदायिक संगठन स्वयंसेवक चक्कर लगाते हैं। गाँव में वैसे तो मुसलमानों की संख्या कम है और संख्या कम होने के कारण वे अन्य लोगों से डरते हैं। मन्ने और उसके साथियों को राष्ट्रद्रोही पाकिस्तानी एजण्ट तरह-तरह के तत्व लेकर बदनाम करते हैं। एक बार तो मन्ने भी घबरा जाता है मगर मुन्नी उसके साहस को बांधता है और संघर्ष के लिए उत्साहित करता है। लेखक का मत है - "यह समस्या धार्मिक नहीं राजनीतिक है और सही राजनीति ही साम्प्रदायिकता का अन्त कर सकती है।"[65] गुप्तजी ने इस समस्या का अन्त किसान-मजदूरों के वर्गिय चेतना तथा वर्ग-संघर्ष द्वारा माना है। मुन्नी द्वारा वे स्पष्ट करते है - "अस्ल में यह लडाई ऊपर के तबकों की है और यह हमारे देश के सामन्तवाद की देन है। इसका इतिहास पुराना है, लेकिन इसके रूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं आया। पहले यह हिन्दु राजाओं और मुसलमान राजाओं की लडाई थी, अंग्रेजों के आने के बाद यह हिन्दू सामन्तों और पूंजीपतियों और मुसलमान सामन्तों और पूंजीपतियों की लडाई बनी। इन लडाईयों से केवल हिन्दु या मुसलमान राजओं, सामन्तों और पूंजीपतियों को ही लाभ हुआ।"[66]

साम्प्रदायिकता की बर्बरता और पाशविकता में एक-एक मन्ने का ही जीवन विशृंखल नहीं अपितु सैकडों ऐसे मन्ने होंगे जो न हिन्दु है, न मुसलमान, है केवल मानव। मन्ने का सिर फुडवाकर लेखक ने साम्प्रदायिकता की भीषण अग्नि की विदग्धता स्पष्ट की है। परंतु विचरणीय यह है कि इस आग को प्रज्वलित करने में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं का हाथ अधिक है।

"मशाल" में चुनावी राजनीति के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक समस्या का संकेत लेखक ने दिया है। हिन्दु चुनाव क्षेत्र में किसी हिन्दु को चुनाव के लिए खडा करना और मुस्लिम क्षेत्र में किसी मुस्लिम को टिकट देना यह नीति राजनीति में स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में पनप उठी है। झूठ सच का

सहारा लेकर अनेक ओछे हथकंडों को अपनाकर मुस्लिम वोटों को हासिल करने के लिए स्वार्थी राजनीतिक नेता हमेशा के लिए आमदा होते है इसी के फलस्वरूप साम्प्रदायिकता पनपने लगते है जिससे देश के सामने अनेक सी आपत्तियाँ खडी हो जाती है। मुस्लिम क्षेत्र का चुनाव कार्य नरेन के हाथों सौंपकर लेखक ने राजनीतिक चुनावों की ओट में पले हुअे साम्प्रदायिकता पर यहाँ संकेत किया है और यह बताने का प्रयत्न किया है कि साम्प्रदायिकता को बढाने में, विकसित करने में कांग्रेस का ही हाथ है।

निष्कर्ष :-

आम जनता जो हिन्दु हो या मुसलमान इन राजनीति के ऐसे बर्ताव से कुचक्र में फस जाती है। असल में यह लडाई वर्गिय-स्वार्थ की लडाई है। साम्प्रदायिकता की समस्या को वर्षों से खत्म करने के प्रयास सुधारवादी ढंग से किये जा रहे हैं मगर इसका समापन नहीं हुआ बल्कि यह और बढती गयी। इसका एक मात्र हल वर्गिय चेतना और वर्ग-संघर्ष द्वारा ही संभव है और यह सभी भी क्योंकि इस उपन्यास में भैरवजी ने इसका समाधान वर्ग-संघर्ष और वर्गिय चेतना द्वारा ही किया गया है। स्कूल के विवाद को लेकर प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील शक्तियों में मुकदमेबाजी होती है। अन्ततः विजय प्रगतिशील शक्तियों की ही होती है। पुरानी कमेटी फिर स्कूल पर अधिराज्य जताती है। यहाँ जनता द्वारा ही साम्प्रदायिक बखेडों को मिटाने का प्रयत्न किया गया है और मन्ने पर फिर विश्वास दिखलाया है।

साम्प्रदायिकता की समस्या को लेकर हिन्दी में अनेक उपन्यास लिखे गये है इस समस्या के फलस्वरूप होनेवाले हत्याकांड, अग्नीकांड, लूटमार, बलात्कार आदि का चित्रण हिन्दी उपन्यासों में देखने को मिलता है। मानवी मूल्यों में आयी हुअी टूटनशीलता, मानव द्वारा अमानवीय रूप धारण करना, विभिन्न जातियों में या धर्मों में मनमुटाव का उत्पन्न होना, शत्रुता का बढना, निरिह लोगों को अपनी जान गवानी पडना, धार्मिक विसंवाद और उग्रता का निर्माण होना, साम्प्रदायिक चेतना से लोगों का विवेकहीन बनना, समाज व्यवस्था में विखंडितता का आना आदि बातों का विवरण भैरवजी ने अपने उपन्यास "सती मैया का चौरा" में भी किया है।

इस समस्या पर मनमतनाथ गुप्त के "रंगमंच" 1960 और "अपराजिता" 1960, राही मासूम रजा के "आधा गाँव" 1966, रामदरश मिश्र के "जल टूटता हुआ" 1969, सच्चीदानंद "धुमकेतु" के "माटी की महक" 1969, मनमोहन सहगल के "कितने दोस्त कितने दुष्मन" 1970, भीष्म सहानी के "तमस" 1973, प्रणवकुमार बंदोपाध्याय के "खबर" 1978, कृष्ण बलदेव वैद्य के "गुजरा हुआ जमाना" 1980, रामानंद सागर के "और इन्सान मर गया", कृष्णचंद के "हम वहशी है" और "पेशावर

एक्स्प्रेस" आदि उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की समस्या पर सोचा है।

औद्योगिकरण की समस्या :-

आजादी के पहले पचास वर्ष अंग्रेजों ने भारत में कल-कारखाने खोले। रेल, बिजली, पूंजी, मार्केट और पानी की व्यवस्था का इन्तजाम किया। गांधीजी ने प्रारंभ से ही अंग्रेजों के इस औद्योगिकरण को विरोध किया था इसका कारण इस औद्योगिकरण का फायदा केवल अंग्रेज ही उठानेवाले थे। आजादी के पश्चात पंचवार्षीय योजनाओं के माध्यम से औद्योगिक विकास को प्राधान्य दिया गया। उद्योगों और व्यवसायों की सुविधा भारतीयों को मिली। कृषि की अपेक्षा भारतीय लोग कल-कारखानों की नौकरी में अधिकाधिक आकर्षित होने लगे। खेती व्यवसाय का भी औद्योगिकरण होने लगा। खेती व्यवसाय में ट्रक्टर, बिजली पंप आदि यंत्रों का प्रयोग होने लगा। आधुनिक खाद यंत्रों की सहायता से कुए को खोदना, सिंचाई करना आदि प्रयोग कृषी क्षेत्र में होने लगे। बांध बांधे जाने लगे, नहर खोले जाने लगे, व्यवसायिक शिक्षा-दीक्षा का बोलबाला हुआ, बुध्दिजीवी और श्रमजीवी वर्ग पैदा हुआ। औद्योगिकरण से पारिवारिक और वैवाहीक संदर्भ परिवर्तित होने लगे। औद्योगिकरण का दुष्परिणाम मजदूर और उनके परिवार एवं उनके समाज पर होने लगा।

आजादी के बाद देश को समाजवादी समाज रचना पर स्वरूप प्राप्त हुआ। योजनाविहीन औद्योगिकरण फलस्वरूप विकास की गती में असंतुलन का निर्माण हुआ। पूंजीपतियों एवं उद्योगपतियों को बेतहाशा छूट मिली और संरक्षण भी मिला परिणाम स्वरूप उनका अधिकार भी बढ गया। चीजों के दाम, बेकारी बढ गयी। युवा वर्ग गुमराह एवं अभावग्रस्त बना। औद्योगिकरण का शोषणचक्र गतिशील हुआ।

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "मशाल" 1951 में औद्योगिकरण की समस्या का विस्तार के साथ चित्रांकन करके उसके दुष्परिणामों को समकलीत करने का प्रयत्न किया है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी हिन्दी साहित्य के जनवादी चेतना के ख्यातिप्राप्त उपन्यासकार हैं। गुप्तजो सामान्य आदमी के लेखक हैं। शहर की अपेक्षा ग्रामीण जीवन से उनका अधिक लगाव रहा है।

गुप्तजी ने "मशाल" 1951 में श्रमिक-वर्ग के संघर्ष का सैध्दांतिक स्तर पर चित्रण करके औद्योगिकरण की समस्या पर गहराई से सोचा है। उनके उपन्यास में विषय, विचार, घटना और पात्र आदि सभी का सम्बन्ध श्रमिक वर्ग के जीवन से हैं। उपन्यास के सभी पात्र प्रगतिवादी विचारों के हैं। नरेन, मंजूर, शकूर, सकीना, मदीना सभी श्रमिक हैं। श्रमिक होने के नाते उनकी माँगे पूरी नहीं होती। औद्योगिक शक्ति का लांभ उन्हें नहीं मिलता सारा मुनाफा मिल-मालिक को ही मिलता है और यही कारण है कि आज के मजदूर, श्रमिक जाग गये हैं इसका प्रमुख उदाहरण इस उपन्यास में मिल जाता है। श्रमिकों के जीवन का चित्रांकन गुप्तजी ने बडे सजीव रूप से किया है। मजदूर अब न्याय और

LIBRARY

अन्याय के बारे में सही क्या गलत क्या वह समझ गये हैं और अब अन्याय का मुकाबला करने की हिम्मत सभी मजदूरों में आ गयी है। उन्होंने एक संगठन बनाया है। शकूर कहता है - "मजदूर क्या है, उसके काम की कीमत क्या है, उनका संगठन क्या है, उनके संगठन का मकसद क्या है? जैसे-जैसे ये बातें मेरी समझ में आती गयीं, मुझमें एक नयी जिन्दगी, एक नया जोश, एक नयी हिम्मत, एक नया बलवला, एक नयी ताकत, एक नयी लडाई, एक नया मक्सद करवटें लेने लगा और मैंने मजदूर होकर अपने-आप को एक बदला हुआ इन्सान पाया।"[67] यहाँ शकूर मजदूर है मगर अब उसे पता चल गया है कि उनका हक क्या है? उसे कैसे मिलना है? उसके लिए क्या-क्या करना है? ये सारी बातें समझ में आने के कारण वह भी उनकी माँगों के लिए हडताल में शामिल हो जाता है। शकूर कहता है - "साहब लोग हजार रूपया महीना पाते हैं, और काम..... काम दो आने का भी नहीं करते, लेकिन हम मजदूर लोग आठ-आठ घंटे छाती फाडकर काम करते हैं लेकिन हम लोगों को पेटभर खाना भी नहीं मिल पाता।"[68] यहाँ कल-कारखानों के अफसर तथा मालिकों की आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति लक्षित होती है।

शकूर, सकीना, मदीना, नरेन, मंजूर सभी मजदूर हैं और अपने अधिकारों के लिए लडते है। इसी कारण इन्हें संघर्ष करना पडता हैं। उन्हें लगता है कि - लाख तकलिफों के होते हुअे भी संघर्षों में जूटे रहने में एक मजा आता है। और वह भी संघर्ष करते है। "मशाल" की पुरूष पात्रों के साथ स्त्री पात्र भी संघर्ष में शामिल है। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में ये बात स्पष्ट की है - "मजदूरों के इस संयुक्त मोर्चे का आवाज कानपुर के मजदूर अन्दोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगी। आठ मजदूर शहीदों और सत्तर घायल मजदूरों के लाल खून से कानपुर के मजदूरों ने जो जंगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे की मशाल जलाई है, वह कभी न बुझेगी। उसकी लाल रोशनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायगी और जनता के सभी शोषित वर्गों को भी इन्कलाबी की लडी में पिरो कर मजदूरों के इन्कलाब का रास्ता दिखायगी।"[69] यहाँ औद्योगिकरण के दुष्परिणाम स्वरूप हडतालों का जन्म कैसे होता है इसका पता चलता है।

"मशाल" उपन्यास में मजदूरों का संघर्ष दिखाया गया है। नरेन कहता है - "अब यह लूट का बाजार बहुत दिनों तक नहीं चल सकता अब हम भी कुछ कुछ लूट को समझने लगे है, हम भी अपने हक, अपनी मेहनत, अपनी ताकत, अपनी मुहब्बत, अपनी इज्जत-आबरू को समझने लगे हैं। इस समझ का नतीजा आज हफ्ते से चलती हमारी यह हडताल है।"[70]

भैरवप्रसाद गुप्तजी "सती मैया का चौरा" 1959 में कृषि-औद्योगिकरण पर सोचा गया है। पिअरी गाँव में समस्त योजनाएँ राजनीति से प्रतिबध्द हैं। परम्पराओं के तथाकथित जनसंघी और

और कांग्रेसी गाँव में स्कूल, सहकारी-फार्म, बिजली एवं अन्य साधनों को विकसित नहीं होने देते। मन्ने और मुन्नी प्रगतिशील है वे नये जमाने के करवट को पहचानते है और तो और मन्ने के वैयक्तिक प्रभाव के कारण जुब्ली मियाँ जैसे कट्टर जमींदार सहकारी फार्म के लिए जमीन ही नहीं देते आर्थिक सहायता भी देते हैं ताकि ट्रैक्टर आ सकें और खेती का कार्य सुचारू रूप से चल सके।

अब पिअरी गाँव आँखे खोल चुका है। पिअरी गाँव भारत के अनेक गाँवों का प्रतीक है जिसमें योजनाओं, विकास कार्यों ने ग्राम-चेतना को नये संदर्भ एवं आयाम दिये है। "स्कूल... पंचायत .... को.ऑपरेटि फारम.... ग्राम उद्योग हर मंजिल पर जिन्दगी सँवरती जाएगी।...सरकार जो भी पंचायत को, गाँव को, फारम को, स्कूल को दे रही है, उसे अफसरों और स्वार्थी लोगों और नेताओं के पंजों से छीनकर गाँव की भलाई और तरक्की के कामों में हम लोगों को लगाना है और सरकार से अधिक सहायता माँगना है। कितने ही गाँव संगठित रूप से काम करेंगे। अकेले हमारे ही गाँव में तो यह लडाई नहीं चल रही है।"[71]

गुप्तजी ने कृषिगत यान्त्रिकरण का प्रयोग उपन्यास में किया है। पिअरी गाँव में मुन्नी और मन्ने जैसे पात्र होने के कारण जुब्ली मियाँ जैसे रूढिवादिता के शिकार भी अपनी मान्यताओं में परिवर्तित दृष्टिगत होते है। जुब्ली मियाँ मन्ने को प्रोत्साहित करते हुअे कहते हैं - "तुम फारम में दिलचस्पी लो, हमसे चल-बल नहीं रहा। इसे सच्चे माने में को ऑपरेटिव फारम बनाओ, ज्यादे से ज्यादे किसानों को इसमें शामिल करो। एक ट्रैक्टर खरीदो। मेरे पास कुछ रूपये हैं, मैं उसे लगा दूँगा।"[72]

कृषि की अपनी एक परम्परा रही है। गाँवों में अशिक्षा के कारण भारतीय किसान आज भी पुरानी रूढियों में गहरी श्रध्दा और विश्वास रखता है। आज कोई नवीन परिवर्तन सहज ग्राह्य नहीं है क्योंकि पैतृक-भूमि के प्रति भारतीय किसान का अटूट लगाव है। मगर गुप्तजी का "सती मैया का चौरा" 1959 में गुप्तजी ने ऐसे ही किसानों को सहकारी खेती की ओर और कृषि के औद्योगिकरण की ओर आकर्षित किया है। इसलिए मन्ने जैसा प्रगतिशील पात्र अश्वस्त होकर कहता है कि - "हमारा गाँव आँखे खोल चुका है। स्कूल...पंचायत.... को ऑपरेटिव फारम....ग्रामोद्योग....हर मंजिल पर जिंदगी सवरती जायगी।"

निष्कर्ष :-

औद्योगिकरण से उत्पन्न होनेवाली समस्या को प्रधानता देते हुअे लेखक ने यहाँ मजदूर-श्रमिकों को संगठन कराकर इस समस्या का समाधान किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास लेखकों ने औद्योगिकरण से हानी एवं लाभ पर प्रकाश डालने का काम किया है। योजनाबध्द विकास कार्यक्रम, गाँवों का औद्योगिकरण कृषी का औद्योगिकरण आदि से उत्पन्न हानर एवं लाभ पर इन उपन्यास लेखकों ने

गहराई से चिंतन किया है। कृषी औद्योगिकरण से खेतीहर मजदूरों में पैदा होनेवाली कुंठाओं का बढना, नवपूंजीपतियों का निर्माण होना, पूंजीपति शोषण का बढना, मानवी रिश्ते और मानवी मूल्यों का शीलिभूत होना, जुग्गी-झोपडियों का निर्माण होना, मानवी-मूल्यों में गिरावट का निर्माण होना, मजदूर-मिल मालिकों का संघर्ष बढ जाना, बिचौलिया शक्ति का निर्माण होना, तालाबंदी, हडताल आदि का निर्माण होना, हाथापाई, मारकाट, खूनखराबा, हत्याकांड, आगजनी आदि हिंसक घटनाओं का घटना ये सारे संदर्भ औद्योगिकरण से जुडे हुअे है। भैरवप्रसाद गुप्तजी के "मशाल" में इन सभी संदर्भों को अच्छी तरह से वाणी देने का काम हुआ है।

साठोत्तरी हिन्दी के उपन्यासों में कृषी औद्योगिकरण, नागरी औद्योगिकरण आदि का अच्छा वर्णन मिलता है। रेणू के "परती परीकथा" 1961, हिमांशु श्रीवास्तव के "नदी फिर बह चली" 1961, रेणू के "जुलूस" 1965, विश्वंभरनाथ उपाध्याय के "रीछ" 1967, भगवती चरण वर्मा के "सीधी-सच्ची बातें" 1968, उदयराज सिंह के "अंधेरे के विरूध्द" 1970, राजेंद्र अवस्थी के "बिमार शहर" 1973, जगदंबा प्रसाद दीक्षित के "मुर्दाघर" 1974, सतिष जमाली के "प्रतिबध्द" 1974, विवेकी राय के "लोक ऋण" 1977, आशिष सिन्हा के "समय बितता हुआ" 1978 में औद्योगिकरण के समस्या पर गहराई से चिंतन किया गया है और औद्योगिकरण के लाभ एवं हानि पर विस्तार से चिंतन किया है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी का "मशाल" इन औद्योगिकरण की समस्याओं पर आधारित उपन्यासों में से "माईल स्टोन" लगता है। भैरवजी जनवादी, प्रगतिवादी उपन्यासकार होने के कारण इनके प्रस्तुत उपन्यास में औद्योगिकरण की समस्या विस्तार के साथ अनुभूति और संवेदना की वोट में फलती-फूलती रही है।

गुप्तजी ने "सती मैया का चौरा" में कृषि औद्योगिकरण पर विस्तार से सोचा है। उपन्यास में चित्रित पिअरी गाँव भारत के समस्त गाँवों का प्रतिनिधित्व करता है।

अनुपयोगी शिक्षा व्यवस्था की समस्या :-

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "नौजवान" उपन्यास में बेकारी की समस्या को चित्रित किया है। विद्यार्थी संघर्ष को चित्रित करते हुअे गुप्तजी ने बेकारी की समस्या की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। आज हम इकीसवी सदी की ओर जा रहे हैं मगर हमारी युवा पिढी आज काम मिलने की चिंता में उनकी काफी उम्र निकल जाती है। आज की हमारी शिक्षा पध्दति पर व्यंग गुप्तजी ने किया है। आज विद्यार्थी कल्याण की ओर किसी का ध्यान नही जाता। समस्त विश्व में आज "युवा मानस" के रूप में एक नयी पिढी का अभ्युदय हो रहा है। असंतोष की भावना के कारण, इस पिढी में विद्रोह की भावना

व्याप्त है। आज इस पिढी की युवा पिढी की युवा चेतना में, पुरानी पिढी के दकियानुसी विचारों के प्रति असंतोष, सामाजिक मान्यताओं, रूढ परंपराओं और शिक्षा तथा शिक्षण संस्थाओं में प्रचलित पुराने ढर्रे की शिक्षा पध्दति के गहन आक्रोश तथा विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्व-विद्यालयों के प्रबंधों के तानाशाही व्यवहार के प्रति घोर विद्रोह और गुस्सा इन उपन्यास में व्याप्त है।

आज विद्यार्थियों के मुकाबले में अध्यापकों की संख्या अनुपाततः कम है। परिणामस्वरूप एक विद्यार्थी पर अध्यापक उतना ध्यान दे नही पाता जितना आवश्यक है। और विद्यार्थी उस व्यापक शिक्षा-दीक्षा से वंचित रह जाते हैं जो उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए आवश्यक है। आज विद्यार्थियों को अच्छी-अच्छी पुस्तकें प्राप्त नही होती। विश्वविद्यालयों में अच्छे पुस्तकालय नही हैं, पुस्तकों के बिना विद्यार्थी शास्त्रीय अध्ययन अथवा संशोधन नहीं कर सकते।

विश्वविद्यालयों में पाठयक्रम निर्धारित करते समय विषयों की व्यापकता पर विशेष ध्यान नही दिया जाता। आज नये विश्वविद्यालयों की, कालेजों की माँग की जा रही है। किन्तु विद्यार्थी कल्याण की ओर कोई ध्यान नहीं देता। उनके मनोरंजन के लिए कोई व्यवस्था नही की जाती। देश के राजनीतिक दल अपने स्वार्थ के लिए विद्यार्थियों का उपयोग कर रहे हैं। विश्वविद्यालयों में कोई आन्दोलन आरंभ करना और उसमें विद्यार्थियों को खींचना राजनीतिक दलों का विशेष अंग बन गया है। लेखक ने राजनीतिक व्यवस्था जो शिक्षा व्यवस्था में हिस्सा ले रही है उस पर व्यंग किया है। राजनीतिक व्यवस्था आज हमारे शिक्षा व्यवस्था में अपना कार्य कर रही है। विद्यार्थियों पर कोई ध्यान नही देता। उनकी मनोरंजन की कोई व्यवस्था आज नहीं है - राधाकृष्णन आयोग की शिफारिस के अनुरूप कई विद्यालयों में "विद्यार्थी कल्याण अधिष्ठाता" के कार्यालयों की स्थापना हुई है, लेकिन यह कार्यालय छात्रों के लिए सचमुच कुछ नही करता। यह केवल छात्रों को रियायती टिकट, रेलवे टिकट दिलाने का कार्य करता है।"[73] राजनीतिक आंदोलनों के कारण सारा शैक्षिक कार्य ठप्प पड जाता है, पूरे राष्ट्र को इससे क्षति पहुँचती है।

"विद्यार्थियों के लिए सामूहिक कार्यक्रमों की कोई व्यवस्था विश्वविद्यालय नहीं करते। विदेशी विश्वविद्यालयों की नकल करने के लिए अतिरिक्त पाठयक्रमों में कोई भी नवीनता लाने में विद्यार्थी कल्याण के अधिष्ठाता अक्षम है, उनमें न तो योग्यता है, न क्षमता, न देखने समझने की दृष्टि न श्रमसाध्यता। प्राध्यापक लोग परिक्षा के कार्य को अपनी सेवाओं के अंतर्गत नही समझते, वे प्रश्नपत्र बनाने और उत्तरपत्रिका जाँचने के लिए अलग से भारी परिश्रमिक लेते हैं जिसे परिक्षार्थियों से वसूल किया जाता है।"[74]

उपन्यास का प्रगतिवादी पात्र योगेश इस शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग करता हुआ कहता है

"विद्यार्थियों की संख्या कम कर दो, पाठयक्रमों में व्यापकता लाओ, वार्षिक तथा छः माही परिक्षाओं के बदले मासिक या पाक्षिक परिक्षाएँ चलाओं, विद्यार्थियों के कल्याण तथा मनोरंजन की व्यवस्था करो, उनके चरित्र-निर्माण पर ध्यान दो, और उन्हें राजनीतिक दलों से बचाओं, फिर देखो विद्यार्थियों की समस्यायें चुटकी बजाते सुलझ जाती हैं कि नहीं और विद्यार्थी शांत हो जाते है कि नहीं।"[75]

"नौजवान उपन्यास का प्रगतिवादी पात्र योगेश शिक्षा-व्यवस्था पर बडा प्रहार करता है। वह आज की शिक्षा पध्दति कों सही नहीं मानता। आज शिक्षा क्षेत्र में भी पूंजीपतियों और राजनीतिज्ञों का प्रवेश हो चुका है। विश्वविद्यालयों में नौकरशाही का आगमन हो चुका है। आज बाहय शक्तियाँ, राजनीतिक दल विश्वविद्यालय के वातावरण को दूषित करना चाहते है।

आज की शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग करते हुअे गुप्तजी लिखते है - आज विश्वविद्यालयों का पाठयक्रम निर्धारित करते समय विषयों की व्यापकता पर कोई ध्यान नही दिया जाता। अधिकतर ये पाठयक्रम अध्यायों के शिर्षकों से अथवा उनमें थोडा परिवर्तन करके बनाये जाते हैं और उन्हीं की सिफारिश की जाती है। पाठयक्रम, मनोरंजन, विद्यार्थियों के बारे में, पुस्तकालयों के बारे में विचार नही किया जाता। इसीके कारण विद्यार्थी आंदोलनकारी बन जाते हैं। विद्यार्थी अपनी माँगों के लिए आंदोलन का रास्ता अपनाते हैं।"[76] छात्रों को आंदोलन के लिए उकसाने का काम आज अनुपयोगि शिक्षा पध्दति कर रही है।

निष्कर्ष :-

भैरवजी का यह उपन्यास छात्र कल्याणकारी लगता है। इस उपन्यास में उन्होंने "अनुपयोगि शिक्षा व्यवस्था" पर करारा व्यंग करके छात्रों के कल्याण के लिए गहराई से सोचने का संकेत दिया है। इस समस्या के माध्यम से लेखक ने आज की परिक्षा-पध्दति, छात्रों का विश्वविद्यालयों के पदाधिकारी आदि पर भी व्यंग किया है। ऐसी अनुपयोगि शिक्षा पध्दति बेकारी को बढाने का और छात्रों को गुमराह करने का अच्छा काम करती है, यह भी प्रस्तुत किया गया है। भैरवजी के अन्य उपन्यासों की समस्याओं की अपेक्षा "नौजवान" की यह समस्या बिलकुल अलग महसूस होती है जिसमें भैरवजी ने छात्रों की हिमायत करके उनके सामने ऐसी अनुपयोगि शिक्षा-पध्दति के खिलाफ क्रांति करने का सबक भी रखा है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने इस समस्या में भारतीय छात्रशक्ति की मानसिकता, स्वतंत्र भारत की अनुपयोगि शिक्षा नीति से उत्पन्न छात्रों में स्थित अराजकता, बेकारी, युवा आक्रोश, आज की युवा शक्ति की साहसिक और रचनात्मक मानसिकता आदि पर गहराई से चिंतन किया है। गुप्तजी के मतानुसार छात्र शक्ति की संकल्पशक्ति को शासन की अनुपयोगि शिक्षा पध्दती से टकराना पडता है जिससे विद्यार्थियों

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

की विद्रोही प्रवृत्ति और आंदोलनकारी चेतना बढती जाती है आज की छात्रशक्ति अपनी अस्मिता के नकारे जाने के विरूध्द संघर्ष करना चाहती है। हिन्दी के अनेक उपन्यास लेखकों ने छात्र आंदोलन पर गहराई से चिंतन किया है परंतु इन उपन्यासों में अनुपयोगि शिक्षा-व्यवस्था से विद्यार्थियों की टकराहट नही लक्षित होती है। काशीनाथ सिंह के "अपना मोर्चा" 1972, शिवप्रसाद सिंह के "गली आगे मुडती है" 1974, सुदर्शन मजीठिया के "उखडी हुअी आँधी" 1979 आदि उपन्यासों में छात्र आंदोलन पर गहराई से सोचा है।

वेठबिगारी की समस्या :-

"आग और आंसू" गुप्तजी का एक सफल उपन्यास है। गुप्तजी ने इस उपन्यास में महत्वपूर्ण समस्याओं को उठाया है। बडे सरकार शोषक वर्ग के प्रतिनिधि हैं। वह सभी तरह से भोले-भाले किसानों, नारियों को अपने अत्याचार का शिकार बनाते है। माफी पानेवाले किसानों, जमींदारों की पीढी-दर-पीढी गुलामी करनी पडती है इसका सजीव चित्रण गुप्तजी ने उपन्यास में प्रस्तुत किया है बेंगा ऐसे ही एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हैं। बेंगा अपने पुत्र पर जमींदार (बडे सरकार) के अत्याचार देखकर विवश है, वह चतुरी की माँ से कहता है - "सारी जिनगी बेकार चली गयी।.... मेरे ही सबब पेंगा की जिनगी खराब हुई।....मेरी अपनी भी जिनगी खराब हुई।... और चतुरिया को भी मैं ही ले डूबा।... इस गुलामी की सबब से जमींदार का कैसा काम नहीं करना पडता।"[77]

यों तो सभी आसामी बडे सरकार का बेगार करते थे, लेकिन ये माफी पानेवाले तो चौबिसों घंटे के गुलाम थे। बेंगा उनमें मुख्य था, क्यों कि उसे हमेशा बडे सरकार के जाति खिदमत में रहना पडता था। बेंगा के होश संभालते ही उसका बाप मर गया और उत्तराधिकार में ये गुलामी उसे दे गया। बेंगा ने तो बडे सरकार की सेवा-चाकरी कुबूल कर ली थी मगर बेंगा का लडका चतुरी इसे स्वीकारना नहीं चाहता इस बारे में वह खुद अपने बाप का विरोध करता है। बेंगा की स्थिति प्रेमचंद के "गोदान" का नायक होरी जैसी ही है। बेंगा सब समझता फिर भी वह कुछ नही कर सकता। चतुरी और गोबर नयी पीढी के नवोदित चेतना के रूप में दिखाई पडते हैं। बेंगा का पुत्र पेंगा बडे सरकार की गुलामी का शिकार है।

निष्कर्ष :-

जमींदारों द्वारा सर्वहारा किसान-मजदूरों का हमेशा के लिए शोषण किया जाता है इस शोषण के विविध आयाम हिंदी उपन्यासों में देखने को मिलते हैं, इनमें से वेठ-बिगारी एक महत्वपूर्ण आयाम माना जाता है। इस वेठबिगारी में कर्ज का बोझ मजदूर के सिर पर रखकर उसे मुफत में या कम दामों में काम करवा लिया जाता है। हिंदी भाषा प्रदेशों में इस वेठबिगारी का प्रचलन आज भी अधिक

मात्रा में देखने को मिलता है। वास्तव में कानून से वेठबिगारी की प्रथा समाप्त कर दी गयी है परंतु जमीदारों के वंशजों में पुरानी ऐंठन अभीतक दूर नही हो पायी है। अपनी पुरानी परंपरा के अनुसार वे मजदूरों के पूरे घर-परिवार के सदस्यों से वेठबिगार लेते है। जमींदारी शोषण का यह एक प्रभावी आयाम माना जाता है। महाराष्ट्र में मराठवाडा, कोंकण, ठाणे आदि भागों में आज भी बहुत कम मात्रा में वेठबिगारी देखने को मिलती है। हिन्दी भाषा प्रदेशों में मात्र इस प्रथा का प्रचलन अधिक मात्रा में देखने को मिलता है। इसलिए हिन्दी उपन्यासों में आज भी यह समस्या कम-अधिक मात्रा में देखने को मिलती है।

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने "आग और आंसू" 1983 में वेठबिगारी समस्या का चित्रण करके आज भी यह समस्या शेष है इसकी तरफ संकेत किया है। इस उपन्यास में बडे सरकार के आश्रय में पले हुअे बेंगा और पेंगा की वेठबिगारी के माध्यम से इस समस्या पर प्रकाश डालने का काम भैरवजी ने प्रगतिवादी दृष्टिकोण से किया है।

पुलिस शोषण की समस्या :-

आज सामंती शोषण, पूंजीपति शोषण, महाजनी शोषण, नारी शोषण आदि शोषण के विविध आयाम माने जाते है। आज बीसवी सदी में शोषण का एक और प्रभावी आयाम नजरअंदाज आ रहा है, वह है पुलिस द्वारा शोषण।

आजादी के पहले और आजादी के बाद में भी पुलिस की कुटिल नीति के कारण दुर्बलों पर उनका आतंक नजर आ रहा है। पुलिस का दमनचक्र बढते रहना,पूंजीपतियों के साथ उनका लांत-काटी-रोटी का संबंध होना, भ्रष्टाचार करना, सत्ता के बल पर अनेक नारियों को भोगना, नृशंसतापूर्ण व्यवहार करना आदि बहुविध आयामों के साथ आज पुलिस भ्रष्टाचार लक्षित होने लगा है।

सन 1960 के पश्चात ग्रामीण परिवेश में पुलिस का भय अवश्य कम होने लगा है लेकिन पुलिस द्वारा ग्रामवासियों को भयंकर यातनाएँ बर्दाश्त करनी पडती जा रही हैं।

भैरवप्रसाद गुप्तजी ने यही बातें नजरंदाज करके पुलिस भ्रष्टाचार पर खुलकर प्रकाश डाला है। भैरवजी के मतानुसार पुलिस के काले कारनामों से ग्रामीण जनजीवन पूरी तरह पीडित है। अपने आलोच्य उपन्यासों में भैरवजी ने पुलिस आतंक का भयावह रूप पाठकों के सामने रखा है।

वास्तव में पुलिस विभाग शासन का महत्वपूर्ण अंग होता है। इस माहौल की कार्यक्षमता, नैतिकता एवं चरित्र से ही शासन व्यवस्था का मूल्यांकन हो सकता है। पुलिस एक तरफ से शासन तंत्र की नीतियों से बध्द है और दूसरी तरफ सामाजिक अपराध वृत्ति से। भैरवजी ने पुलिस माहौल की इस स्थिति पर खूब विचार किया है। आज शिक्षा-प्रसार से निर्मित ग्रामचेतना के कारण लोग पहले जैसे

पुलिसों से डरते नही हैं।

पुलिस शोषण का सही-सही चित्रांकन गुप्तजी ने "मशाल" ।953 में किया है। नरेन, शकूर, मंजूर, सकीना, मौलाना युसूफ आदि सभी मजदूर अपने हकों के लिए लडते है। जब मिलों में तालाबंदी लगा दी जाती है तब सभी मजदूर हडताल पर उतर आते है मिल मालिक मजदूर नेता कालीशंकर और मौलाना युसूफ के नाम वॉरंट निकलता है मजदूरों के हडताल को तोडने के लिए पुलिस ने धारा एक सौ चौआलीस लगा दी, मजदूरों की बस्तिओं में कफर्यु की धमकी दी और मिटिंग जुलूस पर पाबन्दी लगा दी मगर मजदूरों ने अपनी हडताल जारी रखी तो परिणाम यह हुआ कि - "तडातड लाठियाँ चलने लगी। निहत्थे मजदूर पटापट गिरने लगे। राइफलें भी तडतड करने लगी। निशाना ताक-ताक कर वे गोलियाँ चला रहे थे। पहले औरतें गिरी,फिर मर्द गिरने लगे। सडक पर खून की धारें बह चली।"[78]

"सती मैया का चौरा" ।959 में भी पुलिस के व्यवहार का अच्छा उदाहरण देखने को मिलता है। गुप्तजी ने गाँव के गरीब चमार की बेटी कैलसिया का चित्रण इस संबंध में किया है। जबम दिन-दहाडे कैलसिया की इज्जत लूट ली जाती है तब मन्ने के अब्बा थाने जाकर सक किस्सा सुनाते है तब थानेदार बहुत ही प्रतिक्रियावादी स्वर में उत्तर देता है - "आप क्यों यह जहमत अपने सिर उठा रहे हैं? इन सालों की कौन ऐसी बहू-बेटी है, जो बची हुई है। इनके लिए तो यह सब खाने-पीने की तरह है।"[79] यहाँ लेखक ने स्पष्ट किया है कि आज थानों में बगैर पैसों की रिपोर्ट नहीं लिखी जाती। पुलिस सामाजिक सुरक्षा के स्थान पर सामाजिक असुरक्षा का कारण बन रहे है।

"नौजवान" ।974 में गुप्तजी ने विश्वविद्यालयीन विद्यार्थियों के प्रश्नों पर हमारा ध्यान खिंचा है। आज की शिक्षा पध्दति, शिक्षा का निर्धारित पाठयक्रम दोषपूर्ण है इसका विरोध विद्यार्थी संगठन द्वारा करते है तब विद्यार्थियों के जलूस पर सरकार नियंत्रण लाना चाहते है। गुप्तजी ने इसका चित्रण इस प्रकार किया है - "सरकार की कोशिश होती है कि जलूस न निकले, कोई प्रदर्शन हो ही नही, कोई जलूस निकलने के पहले ही शहर में धारा ।44 लागू कर देती है, और अगर जलूस निकला तो पुलिस लाठियाँ बरसाती है, गोली दाग देती है, अंधाधुन्द गिरफतारियाँ होती है और धर्मदेव जैसे निरपराध छात्र को जख्मी होना पडता है।"[80]

हमारा न्याय और कानून भी उन्ही का ही साथ देता है जिनके पास पैसा है। गाँव में चतुरी और महावीर प्रगतिशील युवक हैं जो गाँव के जमींदार के शोषण के विरोध में उनका मुकाबला करते हैं। जमींदार, बनीये, दुकानदारों को भी लूटते हैं। टाऊन एरिया और जमींदारों की मुकदमेबाजी चलती है। चतुरी और महावीर दोनों सत्य का पक्ष लेते हुअे दुकानदारों का पक्ष लेते हैं इसी कारण

चतुरी और महावीर जमींदार के रिश्वतखोर पुलिस और दरोगा, कांस्टेबल सरकारी काम में दखल देने के झूठे आरोप में थाने भेज देते हैं। महावीर, समेसर, चतुरी आदि युवक लाल झण्डे के नीचे एकत्र होकर सामाजिक-आर्थिक अन्याय के प्रति संघर्ष करते हैं।

आज की पुलिस, कलक्टर, दरोगा, कांस्टेबल, न्यायालयीन व्यवस्था, कानून, वकील सभी पैसों पर चलकर दोषी व्यक्ति को छोडकर अन्य व्यक्तियों पर अत्याचार करते हैं। यहाँ इसी रिश्वतखोरी पर व्यंग करते हुअे गुप्तजी ने लिखा है - "कानून का रास्ता जितना लम्बा है, उतना ही पेचिदा भी। शतरंज के बत्तीस मोहरे लेकिन चाले अनगिनत। तहसील से लेकर हाईकोर्ट तक और विलायत तक बिसाते बिछी हैं। एक से बढकर एक भाडे के खिलाडी हैं।"[81] तात्पर्य यह है कि यहाँ सभी चीजें पैसों के बलपर चलती हैं। पुलिस भी उनका ही साथ देती हैं जिनके पास पैसा है आज न्याय भी पैसे की तराजू पर तुलता है। गाँव के सचेतन नौजवान युवक किसानों को पारस्परिक मनमुटाव, हित-अहित और वैयक्तिक स्वार्थों से परे रहने को प्रेरित करते हैं और शोषण के विरूध्द सामूहिक संघर्ष और संगठन पर बल देते हैं। परिणाम स्वरूप किसानों में वर्गीय चेतना पैदा होती है। गाँव के किसान पुलिस का शिकार बना चतुरी को छुडाने का प्रयास करते हैं। समेसर के नेतृत्व में बडे सरकार के जलसे में आनेवाले पुलिस तथा जिलाधिकारियों का रास्ते में ही घिराव किया जाता है। कम्युनिस्टों की बढती शक्ति और संगठन देखकर अधिकारी चिन्तित हो उठते हैं। बडे सरकार के पास शिकायत करते हुअे कलक्टर कहता है - "जिले के कुछ हिस्सों में कम्युनिस्टों का जोर बढता जा रहा हैं, सबसे बडा खतरा हमें इन्हीं से हैं.... जल्दी ही रोकथाम न की गयी तो यह खतरा हम सब पर बन आयेगा।"[83]

यहाँ भैरवजी ने किसानों की संगठन शक्ति के माध्यम से पुलिस आतंक पर दबाव लाने का प्रयत्न किया है। भैरवजी प्रगतिवादी दृष्टिकोण के होने के कारण उनकी धारणा है कि समाज में जहाँ-जहाँ अवैध बातें चलती है, उन बातों का मुकाबला करने के लिए संगठन-शक्ति एकमात्र रामबाण औषधि हो सकती है।

निष्कर्ष :-

पुलिस शासन तंत्र का महत्वपूर्ण अंग होता है। ये लोग जनता को लूटकर उसका शोषण करते रहते है। स्वतंत्रता पूर्वकाल में गोरे पुलिसों ने अनन्वित अन्याय और अत्याचार किये, स्त्रियों की अस्मत लूटी। भैरवजी ने अपने उपन्यास "मशाल" 1951 में इसका चित्रण विस्तार के साथ किया है। भैरवजी ने "गंगामैया" 1953 में जमींदारों का पुलिसों के साथ दांत-काटी-रोटी का संबंध होने के कारण वे पुलिसों की सहायता से इन गरीब सर्वहारा कृषकों पर कितना अन्याय करते थे इसका पता चलता है। जमींदारों के खिलाफ कृषकों का संगठन करनेवाले मटरू पर डकैत के झुटे इल्जाम थोंपकर बंदी बनाया

जाता है यह इस शोषण का अच्छा उदाहरण हो सकता है। "नौजवान" 1974 में भैरवजी ने अनुपयोगी शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ अंदोलन छेडनेवाले छात्रों पर पुलिसों ने जो अनन्वित अत्याचार किये, मारपीट आदि बातें पुलिस शोषण की गवाही देती हैं।

आज भी पुलिस की करतूतों से ग्राम और शहर पूरी तरह आतंकित हैं। भैरवजी के उपन्यासों से यह स्पष्ट पता चलता है। हिन्दी भाषा प्रदेशों में आज भी शिक्षा का प्रमाण कम होने के कारण वहाँ पुलिस शोषण भयावह रूप में लक्षित होता है। पुलिसों द्वारा गाँव के गुण्डे, गाँव के नेताओं को बिचौलिया शक्ति बताकर, ये लोग जनता को निरंतर लुटते हैं। हिन्दी भाषा प्रदेशों में जातिय भेदाभेद, अशिक्षा का प्रमाण अधिक होने के कारण वहाँ पुलिस शोषण की मात्रा अधिक भयावह रूप धारण कर रही है। भैरवजी ने प्रगतिवादी दृष्टिकोण से इस समस्या की ओर देखा है और इस ओर संकेत भी किया हे कि पुलिसों के शोषण से एवं आतंक से दबने की अपेक्षा संगठनशक्ति द्वारा उनका मुकाबला करने की आवश्यकता है। "गंगामैया" और "नौजवान" इसकी अच्छी गवाही देते है।

हिन्दी के "पानी के प्राचीर" 1961, "उग्रतारा" 1963, "माटी की महक" 1967, "अलग अलग वैतरणी" 1967, "रागदरबारी" 968, "मुर्दाघर" 1974, "कभी न छोडे खेत" 1976 आदि उपन्यासों में पुलिस शोषण की समस्या पर गहराई से सोचा है।

निष्कर्ष :-

भैरवप्रसाद गुप्तजी जनवादी एवं प्रगतिवादी उपन्यासकार होने के नाते उनके उपन्यासों की सारी समस्याएँ सामान्य लोगों के जनजीवन से जुडी हुअी लक्षित होती है। प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध में "मशाल", "गंगामैया", "सती मैया का चौरा", "नौजवान", "आग और आंसू" आदि उपन्यासों में स्थित समस्याओं पर हमने सोचा है। इन उपन्यासों मे भैरवजी ने वर्ग-संघर्ष की समस्या, नारी शोषण की समस्या, बेकारी की समस्या, भ्रष्टाचार की समस्या, राजनीतिक समस्या, साम्प्रदायिकता की समस्या, औद्योगिकरण की समस्या, अनुपयोगि शिक्षा व्यवस्था से उत्पन्न समस्या, छात्र आंदोलन की समस्या, बेठबिगारी की समस्या, पुलिस शोषण की समस्या आदि पर गहराई से सोचा है। इन समस्याओं में से वर्ग-संघर्ष की समस्या, पुलिस शोषण की समस्या, नारी शोषण की समस्या और भ्रष्टाचार की समस्या पर गुप्तजी ने अधिक बल दिया है। गुप्तजी प्रगतिवादी भावधारा के पक्षधर होने के नाते वर्ग-संघर्ष की समस्या पर वे अधिक सोचते हुअे लक्षित होते है। प्रस्तुत आलोच्य उपन्यासों में जमींदार-किसान, मिल-मालिक-मजदूर, वर्ग संघर्ष को दिखाकर संगठन शक्ति पर अधिक बल दिया हुआ लक्षित होता है। भैरवप्रसाद गुप्तजी की धारणा है कि संगठन-शक्ति के माध्यम से समाज के शोषक वर्ग का अंत निश्चित होगा। इसलिए "मशाल", "गंगामैया", "सती मैया का चौरा", "नौजवान", "आग और आंसू"

आदि उपन्यासों के प्रमुख पात्र शोषक शक्ति के साथ वर्ग-संघर्ष करने के लिए तैयार होते है और उसमें उनकी जय भी होती है। अर्थात संगठन शक्ति के माध्यम से जमीदार, महाजन, पूंजीपति आदि पर रोब-गालिब करके अपने हक और कर्तव्यों की माँग की जाती है।

नारी शोषण की समस्या में भैरवजी का प्रगतिवादी दृष्टिकोण उभरा हुआ लक्षित होता है। "मशाल" की सकीना, "गंगामैया" की विधवा भाभी, "सती मैया का चौरा" की कैलासिया, "नौजवान" की भरत की माँ, "आग और आंसू" की मुंदरी, महराजीन, बदमिया, सुंदरी आदि शोषित नारियों के दर्शन भैरवजी ने हमें कराये है। इस नारी शोषण के विविध आयाम हमें देखने को मिलते है "मशाल" की सकीना अंग्रेज पुलिस अफसरों की वासना का शिकार बनती है। "गंगामैया" की विधवा भाभी परंपरा से प्रताडित होकर "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, अंचल में दुध और आँखों में पानी" की उक्ति को साकार करती है। "सती मैया का चौरा" की कैलासिया जमीदार की भोगी वासना का शिकार बन जाती है। "नौजवान" की भरत की माँ का घर की चार दीवारी के अंदर घरेलू शोषण होता है तो "आग और आंसू" में लौंडी जीवन की दर्दभरी कथा और व्यथा समाकलीत की गयी है। इस शोषण के खिलाफ इन नारियों में चेतना जागृति करने का काम भी भैरवजी ने किया है। अर्थात नारी शोषण की समस्या को केवल समस्या के रूप में ही प्रस्तुत न करके इस समस्या का हल भी उन्होंने प्रगतिवादी दृष्टिकोण से कराया है। "गंगामैया" में भाभी का पुर्नविवाह कराकर विधवा विवाह की समस्या को मिटाने का प्रयास किया है। "आग और आंसू" की मुंदरी में प्रगतिवादी चेतना भरकर लौंडी जीवन के खिलाफ विद्रोह करने के लिए उसे उकसाया है। "मशाल" की सकीना अबला न रहकर सबला बन जाती है।

भैरवजी ने "नौजवान" उपन्यास में अनुपयोगि शिक्षा व्यवस्था पर करारा व्यंग करके बेकारी की समस्या को उजागर किया है।

गुप्तजी ने भ्रष्टाचार की समस्या पर भी प्रगतिवादी दृष्टिकोण से सोचकर "सत्ती मैया का चौरा", "आग और आंसू" आदि उपन्यासों में इस समस्या पर चिंतन किया है। ग्रामीण जीवन में और सामंती जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार को पाठकों के सामने रखा है। "गंगामैया" में दियर की भूमि के रूप में राजनीतिक समस्या को चित्रित किया गया है।

भैरवजी साम्प्रदायिकता की समस्या को एक जहर मानते है। इस समस्या से समाज विखंडित होता है। समाज की एकता भंग हो जाती है। आगजनी, लूट-पाट, तोड-फोड, मार-काट आदि का जन्म इसी समस्या से हो जाता है। राष्ट्र की इस हानी को रोकने के लिए भैरवजी साम्प्रदायिक एकता को दृढ बनाना चाहते है। "सती मैया का चौरा" में साम्प्रदायिकता के समस्या को उभारकर

लेखक ने साम्प्रदायिकता समाज के लिए किस प्रकार विघातक होती है ये दिखाया है। आज स्वतंत्र भारत में औद्योगिकरण का बोलबाला शुरू है इससे मिल-मालिकों की मुनाफा एठनें की प्रवृत्ति, मजदूरों का शोषण करने की वृत्ति, काम के घंटे बढाकर अधिकाधिक मुनाफा ऐंठने की आत्मकेंद्रितता पर प्रकाश डालकर औद्योगिकरण से समाज जीवन में होनेवाली हलचलों का पर्दाफाश किया है।

अनुपयोगि शिक्षा-व्यवस्था में विद्यार्थियों का गुमराह होना, शिक्षा-व्यवस्था के प्रमुखों का शिक्षा-व्यवस्था की तरफ दुर्लक्ष होना, इसका परिणाम छात्र आंदोलन में होना आदि पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है।

वेठबिगारी समाज के लिए अभिशाप है "आग और आंसू" के माध्यम से वेठबिगारों के स्थिति और गती पर गहरा चिंतन किया है।

पुलिस शोषण की समस्या में रक्षक ही जब भक्षक बन जाते है तब समाज जीवन की स्थिति कितनी दयनीय होती है इसका चित्रण "आग और आंसू" के माध्यम से मिलता है।

इस तरह भैरवजी ने अपने उपन्यासों में चित्रांकित की हुअी समस्याओं को केवल समस्याएँ न रखकर इसका समाधान भी तलाशने का प्रयत्न किया हुआ है।

०००

संदर्भ :-

1. डॉ. वाय.बी. धुमाळ - "साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन" (1960-1980) (अप्रकाशित शोध-प्रबंध), पुणे विश्वविद्यालय, 1985 पृ. 75-76
2. वही, पृ. 75-76
3. वही, पृ. 248
4. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 30
5. वही, पृ. 33
6. वही, पृ. 29
7. वही, पृ. 29
8. प्रिया आम्बिका - भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, संतोष प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1988, पृ. 55
9. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ.99
10. वही, पृ. 181
12. वही, पृ. 194
13. वही, मशाल की भूमिका
14. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 231
15. वही, पृ. 249
16. डॉ. कुवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पांडुलीपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1976, पृ. 171
17. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ.591-592
18. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं.1983, पृ.46-47
19. वही, पृ. 107
20. वही, पृ. 10
21. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1957, पृ. 69
22. वही, पृ. 76
23. वही, पृ. 140
24. वही, पृ. 230

25. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां सं. 1982, पृ. 39

26. वही, पृ. 42

27. वही, पृ.99-100

28. वही, पृ.92

29. वही, पृ. 92

30. वही, पृ. 96

31. वही, पृ. 98

32. वही, पृ. 99

33. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 591

34. भैरवप्रसाद गुप्त - नौजवान, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1972, पृ. 18

35. वही, पृ. 18

36. वही, पृ. 19

37. वही, पृ. 21

38. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1983, पृ. 41-42

39. वही, पृ. 91

40. वही, पृ. 235

41. वही, पृ. 33

42. वही, पृ. 129

43. वही, पृ. 29

44. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ.589-590

45. भैरवनाथ गुप्त - नौजवान, रचना प्रकाशन - इलाहाबाद, प्र.सं.1972, पृ.116

46. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ.592

47. वही पृ. 586

48. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, तेरहवां संस्करण - 1982 पृ. 92

49. वही पृ. 33

50. वही पृ. 32

51. वही पृ. 30

52. वही पृ. 29

53. भैरवप्रसाद गुप्त - गंगामैया, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, तेरहवां संस्करण 1982 पृ. 126

54. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 268

55. वही पृ. 3 52

56. वही पृ. 662

57. वही पृ. 37

58. वही पृ. 316

59. वही पृ. 599

60. वही पृ. 616

61. वही पृ. 616

62. वही पृ. 609

63. वही पृ. 618

64. वही पृ. 662

65. वही पृ. 625

66. वही पृ. 593

67. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन इलाहाबाद, व्हि.सं. 1957, पृ.99

68. वही पृ. 121 - 122

69. वही मशाल की भूमिका

70. वही पृ. 229

71. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाभ प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1959, पृ. 722

72. वही पृ. 668-669

73. भैरवप्रसाद गुप्त - नौजवान, रचना प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1972, पृ.109-110

74. वही पृ. 110

75. वही पृ. 111

76. वही पृ. 108

77. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1983, पृ.112

78. भैरवप्रसाद गुप्त - मशाल, निलाभ प्रकाशन इलाहाबाद, व्हि.सं. 1957 पृ. 238

79. वही पृ. 60

80. भैरवप्रसाद गुप्त - नौजवान, रचना प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1972 पृ. 117

81. भैरवप्रसाद गुप्त - आग और आंसू, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, प्र.सं. 1983, पृ. 99

82. वही पृ. 320